3-2

जैमिनि सूत्रवृत्तिः सुबोधिनी नामिका

भाषानुवाद सहिता

प्रथमोऽध्यायः

अनुवादक
ब्रह्मचारी सर्वेश्वरानन्दः

जैमिनिसूत्रवृत्तिः सुबोधिनीनामिका

भाषानुवादसहिता

प्रथमोऽध्यायः



अनुवादकः

ब्रह्मनिष्ठो ब्रह्मचारी सर्वेश्वरानन्दः

संशोधक

भूतपूर्व प्रधानाध्यापक श्री बालाजी गणेश
संस्कृत पाठशाला, श्रौतस्मार्त कर्मकाण्डरत्न
पं. तुलाशङ्कर शर्मा भारद्वाज डभोइकर

प्रकाशक

श्री बालाजी गणेश, बडासराफा कॉटन एसोसिएशन

प्रथमबार | वैशाख शुक्ल १४ वि.सं. २००२ | मूल्य
१००० | नृसिंह जयन्ति |

प्रस्तावना

आर्य माननीय महानुभावों ! इस संसारचक्रमें त्रैगुणिक समग्र मानव जातिको स्वच्छानुकूल सुखवैभवादि की इच्छा प्रतिदिन आकांक्षित होनेपर भी तत्तत्फलेच्छायें विपरीत होनेका कारण, " स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते जनः " यह भगवद्वचनामृतका यथोचित पालन न करना प्रतीत होता है इसलिये " कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः, वेदोनित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां " इत्यादि पूज्य भगवदादेश तथाच " धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्म हतोऽवधीत्" इन महर्षि सदुपदेशों से कौनसा धर्म मानना उचित है, इसी शंकापर " वेदोऽखिलो धर्ममूलम् " इस मनुस्मृति से वेदही धर्म मूल माना गया है और वेद स्मृति सदाचार यह मनूक्ति आदिकालसे प्रमाणभूत मानी है। इसी अभिप्रायसे महर्षि जैमिनिने चार्वाक आदि नास्तिक सिद्धांतोंका निरास करते हुए 'अथाऽतो धर्म जिज्ञासा' आदि सूत्रोंसे बारह अध्यायों में वेदोंका समर्थन किया है । कर्मानुष्ठान द्वारा श्रेष्ठफलसिद्धि बताई है इस कलिकाल में उनका ज्ञान जनताको सुलभ प्रकारसे प्राप्त हो इसलिए ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मचारी सर्वेश्वरानन्दजी द्वारा उनका हिन्दी अनुवाद बनवाकर कॉटन कमेटी इन्दौर ने जिज्ञासुओंके करकमलमें यह ग्रन्थ रखकर अपने धर्मोपार्जित द्रव्यका सत्फल प्राप्त करके विश्वकल्याणकी चाहना रखती है

गच्छतस्खलनङ्क्वाऽपि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः ॥

विदुषां वशंवदः
पं. तुलाशङ्करशर्मा

विषयानुक्रमणिका

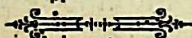
प्रथमाध्यायस्य

द्वितीयःपादः

तृतीयःपादः

अधिकरण		पृष्ठ
९	साधुपद प्रयोगनियमः	९३
१०	लोकवेदयोः शब्दार्थैक्यम् ।	९९
	आकृति शक्तिः । वर्णकान्तरम् ।	१०१

चतुर्थःपादः



॥ श्री गणेशाय नमः ॥

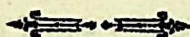




जैमिनिसूत्रवृत्तिः सुबोधिनीनामिका



श्रीशितिकण्ठ भट्टकृता



नत्वा श्रीत्रिपुरामम्बां तत्पुत्रं श्रीगणाधिपम् ।
जैमिनिं भाष्यकारं च कुर्वे वृत्तिं सुबोधिनीम् ॥१॥

॥ ॐ धर्मो रक्षति रक्षितः ॥

सुबोधिनीवृत्त्यानुवाद ।



श्री त्रिपुराम्बा उनके पुत्र गणाधिप जैमिनि तथा भाष्यकार को नमस्कार करके सुबोधिनीवृत्ति को करता हूं ।

शास्त्रारंभसमर्थनम् । अधि० १ ।

अथातो धर्म जिज्ञासा ॥ १ ॥

तत्र द्वादशभिरध्यायैः प्रतिपाद्यमानं शास्त्रमारंभणीयं न वेति संशये स्वाध्यायोऽध्येतव्य इति विहिताध्ययनस्य फलाकांक्षायां विश्वजिन्न्यायेन स्वर्गएव फलं कल्प्यम् । तथा चाक्षरग्रहणमात्रेण स्वर्गसिद्धौ विचारशास्त्रस्य अकिंचित्करत्वाद्विचारशास्त्रं नारम्भणीयमिति बहिः पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह । अथेति । अथ गुरुकुलस्थितिपूर्वकवेदाध्ययनानन्तरम् अतः

शास्त्रारंभ का समर्थन करते हैं। (अथेति)

तहां बारहों अध्यायों करके जैमिनि ने प्रतिपादन किया जो शास्त्र है वह आरंभ करने योग्य है किंवा नहीं । इस संशय के होने पर "स्वाध्यायोअध्येतव्यः— अंगो सहित अपने वेद का अध्ययन करना चाहिए । इस वाक्य से विहित अध्ययन का क्या फल है ! इस आकांक्षा के होने पर विश्वजित न्याय से स्वर्ग रूपही फल की कल्पना करना चाहिए । तथा च अक्षर के ग्रहण मात्र से स्वर्ग सिद्ध हो सकता है इसलिए विचार शास्त्र निष्फल है और निष्फल होने से विचार शास्त्र आरंभ करने योग्य नही ! इस प्रकार सूत्र से बाहर पूर्वपक्ष होने पर सिद्धान्त को कहते है । अथेति । (अथ) गुरुकुल में निवास पूर्वक वेदाध्ययन के बाद

यतः अध्ययनस्य अर्थज्ञानं फलमतः धर्मस्य वक्ष्यमाणलक्षणस्य जिज्ञासा ज्ञानेच्छासाध्यो विचारः कर्तव्य इति शेषः । अयं भावः । दृष्टे संभवत्यदृष्टकल्पनाया अन्याय्यत्वाद् अध्ययनेन तदर्थनिश्चय संपादनस्यैवोचितत्वाद् अर्थतत्त्वज्ञानस्य विचार शास्त्रमन्तराऽसंभवाद् इदं विचारशास्त्रमवश्यारंभणीयमिति ॥१



धर्म लक्षणम् । अधि० २ ।

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ॥ २ ॥

(अतः) जिस लिए अध्ययन का अर्थज्ञान रूप फल है इसलिए आगे जिसका लक्षण किया जायगा उस धर्म की (जिज्ञासा) ज्ञान की जो इच्छा उस इच्छाजन्य विचार करना चाहिए । यह शेष है । भाव यह कि दृष्ट अर्थ के संभव होने पर अदृष्ट अर्थ की कल्पना अयुक्त है इसलिए अध्ययन ही से वेदार्थ का निश्चय करना युक्त है और अर्थ का यथार्थ ज्ञान विचार सिवाय असम्भव है। इसलिए अवश्य यह विचार शास्त्र आरंभ करने योग्य है ॥१॥

अब धर्म का लक्षण करते हैं । चोदना० ।

अथातो० इस सूत्र में जो धर्म का कथन किया है उसका क्या स्वरूप है ! इस प्रकार जानने की इच्छा होने पर धर्म के स्वरूप के ज्ञान के लिए लक्षण कथन करते हैं । चोदनेति ।

अथातो धर्मजिज्ञासेत्यत्र को धर्म इति जिज्ञासायां धर्मस्वरुपज्ञानार्थं लक्षणमाह । चोदनेति । चोदनेति प्रवर्त्तक शब्दनाम । लक्ष्यते ज्ञायते अनेनेति लक्षणम् । यथा धूमेन वह्निर्लक्ष्यतइति वह्निज्ञाने लक्षणंधूमः तद्वद्धर्मे ज्ञाने लक्षणं चोदना । इत्थं च चोदना चोदनैव लक्षणंकरणं यद्विषयकज्ञानस्यस धर्मः तत्वेसति अर्थत्वं धर्मस्य लक्षणं । अर्थत्वं च सुखाधिक दुःखाजनकत्वम् इदं च श्येन यागे धर्मत्वानिवृत्त्यर्थम् । एतेन चोदनाविरिक्तेन्द्रियादिगम्यत्वं धर्मस्य नेत्यपि सूचितम् ॥२॥

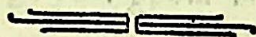
प्रवर्त्तक वचन का नाम चोदना है अर्थात् जिसके श्रवण करने से प्रेरणा पाई जावे उसको चोदना कहते हैं ! जिससे वस्तु जानी जाय उसे लक्षण कहते हैं, जैसे धूम से वह्नि जानी जाती है । अतः वह्नि ज्ञान में धूम लक्षण है वैसे ही धर्मज्ञान में चोदना लक्षण है । जिस विषयक ज्ञान का करण चोदना=वेदाज्ञा ही है वह धर्म है । जिसमें वेद विधि प्रतिपाद्यत्व सहित अर्थत्व है उसी में धर्मत्व है अन्य में नही, इस प्रकार का लक्षण सिद्ध हुआ । सुख से अधिक दुःख का जो जनक नहीं हो वह अर्थ है । श्येनयाग में धर्मत्व की निवृत्ति के लिए सूत्र में अर्थ पद दिया है । वेदाज्ञा ही धर्म में प्रमाण है इस कथन से प्रवर्त्तक वाक्य से भिन्न इन्द्रिय आदियों से धर्मज्ञान नहीं होता यह भी सूचित किया गया ॥ २ ॥



धर्मप्रमाणस्य विचार्यत्वम् । अधि० ३ ।

तस्य निमित्तपरीष्टिः ॥ ३ ॥

इतरप्रमाणानि तत्र प्रसरन्ति न वेति संशयस्य परीक्षां विना निवृत्त्यसम्भवात् तत्परीक्षां प्रतिजानीते । तस्येति । तस्य धर्मविषयकतत्त्वज्ञानस्य निमित्तं करणं तस्य परीष्टिः परीक्षा युक्तिपूर्वकसाधकतर्ककलापैर्विचारः कर्तव्य इति शेषः ।



प्रत्यक्षस्य धर्मप्रमापकत्वाभावः । अधि० ४ ।

अब धर्म प्रमाण का विचार करते हैं—

तस्य० । चोदना भिन्न प्रत्यक्षादि प्रमाण धर्म में प्रवृत्त होते हैं किंवा नहीं यह संशय बिना परीक्षा के निवृत्त नहीं हो सकता और प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाणों का धर्म में अप्रमाण होना निश्चय नहीं हो सकता है अतएव प्रमाण परीक्षा का आरंभ किया गया है । तस्य इत्यादि सूत्र से (तस्य) धर्म विषयक यथार्थ ज्ञान का (निमित्त) करण उसकी (परीष्टिः) परीक्षा युक्ति पूर्वक साधक तर्क कलापों के द्वारा विचार करना चाहिये यह शेष है ।

प्रत्यक्ष प्रमाण की धर्म में अप्रमाणता सिद्ध करते हैं ।

सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यमनिमित्तं विद्यमानोपलम्भात् ॥ ४ ॥

प्रतिज्ञातमेवार्थं विशदयति । सत्सम्प्रयोगइति । पुरुषस्येन्द्रियाणांसति विद्यमाने विषये सम्प्रयोगे संयोगे सति यद् बुद्ध्याः ज्ञानस्य जन्म तत्प्रत्यक्षम् । ईदृशं यत्प्रत्यक्षं तद्धर्मज्ञाने अनिमित्तं नोत्पादकं प्रत्यक्षप्रमासाधनीभूतानीन्द्रियाणि धर्मप्रमां न साधयन्तीति फलितम् । तत्र हेतुमाह विद्यमानस्य

सत्सम्प्रयोगे० । चोदना ही धर्म में प्रमाण है इस प्रतिज्ञात अर्थ का ही विस्तार करते हैं । सत्सम्प्रयोग इत्यादि सूत्र से । (पुरुषस्य) पुरुष को इन्द्रियाणां, अपने चक्षु आदि इन्द्रियों का (सत्सम्प्रयोगे) विद्यमान घटपटादि पदार्थों के साथ संयोगादि सम्बन्ध होने पर (बुद्धिजन्म) जो ज्ञान उत्पन्न होताहै (तत्) उसका नाम (प्रत्यक्षं) प्रत्यक्षहै । (इस प्रकार जो प्रत्यक्षहै वह धर्मज्ञानमें(अनिमित्त) प्रमाण नहीं हो सकता, प्रत्यक्ष घटपटादि विषयक प्रमाका साधक भूत इन्द्रियां धर्म प्रमा को उत्पन्न नहीं का सकती हैं यह फलितार्थ है । उसमें हेतु कहते हैं (विद्यमानोपलम्भात्) विद्यमान=वर्त्तमान पदार्थ का इन्द्रियों के द्वारा उपलम्भ होने से । अग्निहोत्रादि धर्म का ज्ञानकाल में विद्यमान न होने के कारण इन्द्रियों के अयोग्य होने से यह भाव है । सार यह है कि अग्निहोत्रादि धर्म ज्ञान के पश्चात् यत्न से उत्पन्न होता है इसलिए उसके साथ बाह्याभ्यन्तर

वर्त्तमानस्यैव वस्तुनः इन्द्रियैरूपलम्भात् । धर्मस्य ज्ञानकालेऽसत्त्वेन इन्द्रियायोग्यत्वादिति भावः । इन्द्रियाणां तन्निमित्तत्वनिराकरणेन व्याप्तिज्ञानसादृश्यार्थापत्तीनां तन्निमित्तत्वं निरस्तम् । तेषां सर्वेषां प्रत्यक्षफलत्वात् । अतः चोदनामात्रगम्यत्वमेवेति सिद्धम् ॥ ४ ॥



धर्मे वेदस्य स्वतः प्रामाण्यम् । अधि० ५ ।

औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन संबन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात् ॥ ५ ॥

इन्द्रियों के सन्निकर्ष का असम्भव होने से उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता और प्रत्यक्ष न होने से वह प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय भी नहीं हो सकता । इन्द्रियों के धर्मज्ञान में निमित्तत्व के निराकरण से व्याप्तिज्ञान सादृश अर्थापत्तियों का उसमें निमित्तत्व का निराश हो गया उन सब व्याप्तिज्ञानादियों को प्रत्यक्ष प्रमाण के आधीन होने से । अतः चोदना मात्र से धर्मका ज्ञान होता है यह सिद्ध हुआ ॥ ४ ॥

धर्म में प्रत्यक्षादि की अप्रमाणता करके वेद की प्रमाणता कथन करनेके लिए शब्द, अर्थ, के सम्बन्धको नित्य कथन करतेहुए वेदको स्वतः प्रमाण सिद्ध करतेहैं—औत्पत्ति० । शब्द तथा अर्थ

शब्दार्थयोरुत्पत्त्यनन्तर पुरुषेण कल्पितसंकेतात्मक-सम्बन्धस्य कल्पितत्वात्पुरुषकल्पितसंबन्धज्ञानापेक्षत्वाच्छब्दस्य यथा प्रत्यक्षज्ञानं शुक्तिकादौ सत्यत्वं व्यभिचरति तथा पुरुषाधीनत्वेन शब्देऽपि सत्यत्वव्यभिचारसम्भवान्न धर्मे चोदना प्रमाणमिति पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह । औत्पत्तिक इति । शब्दस्य नित्यवेदघटकपदस्य अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इत्यादेः अर्थेन तत्तत्प्रतिपाद्यार्थेन संबंधः शक्तिरूपः औत्पत्तिकः स्वाभाविकः नित्य इतियावत् । अतः तस्य धर्मस्य ज्ञानम अत्र करणेल्युट्ज्ञप्तेर्यथार्थज्ञानस्य करणम् । ननुपर्वतो वह्निमानिति श्रुतावऽपि प्रत्यक्षेण वह्निंदृष्ट्वा शब्देप्रमाणत्वं गृह्णातीति लोके

की उत्पत्ति के बाद पुरुष कल्पित संकेतात्मक संबन्ध को कल्पितत्व होने से शब्द को पुरुष कल्पित सम्बन्धज्ञान की अपेक्षा होने के कारण जैसे शुक्तिका आदि में "इदं रजतं" यह प्रत्यक्ष ज्ञान अपने विषय की सत्यता का व्यभिचारी होता है वैसे ही शब्द को पुरुष के आधीन होने से शब्द में भी अपने अर्थ के सत्यत्व का व्यभिचार संभव होने से धर्म में चोदना प्रमाण नही हो सकता । इस पूर्व पक्ष के होने पर सिद्धान्त को कहते हैं । औत्पत्तिक इति । (शब्दस्य) "अग्निहोत्रंजुहुयात्स्वर्गकामः" इत्यादि नित्य वेद वाक्य में स्थित प्रत्येक पद का (अर्थेन) अपने अपने अर्थ के साथ (सम्बन्धः) शक्ति रूप संबंध (औत्पत्तिकः) स्वाभाविक अर्थात नित्य संबंध है । इसी से (तस्य) पूर्वोक्त

प्रसिद्धं तथा च प्रत्यक्षादीतरप्रमाणसापेक्षत्वात्कथं धर्मे प्रमाणमत आह। अनुपलब्ध इति। अनुपलब्धे प्रत्यक्षादिप्रमाणैरनुपलब्धेऽर्थे उपदेशः अव्यतिरेकः अर्थाव्यभिचारी दृश्यते अत इतरानपेक्षत्वात् प्रत्यक्षाद्यनपेक्षत्वात् तद् विधिघटितवाक्यं धर्मे प्रमाणं बादरायणाचार्यस्य अनुमतम्। अयं भावः पर्वतो वह्निमानिति दोषवत्पुरुषप्रयुक्तमर्थं व्यभिचरत्यतः प्रामाण्यनिश्चयेप्रत्यक्षादिकमपेक्षते तथाग्निहोत्रं जुहोतीति वाक्यं कालत्रयेऽप्यर्थं न व्यभिचरति

धर्म के (ज्ञानं) यथार्थज्ञान का करण है अर्थात् साधनहै। ननु० पर्वत वह्नि वाला है इस शब्द के श्रवण होने पर भी प्रत्यक्ष प्रमाण से वह्नि देखकर के शब्द में प्रमाणता का ग्रहण होता है। यह बात लोक में प्रसिद्ध है तथा च प्रत्यक्षादि जो इतर प्रमाण् हैं उन्होंकी अपेक्षा रखने से धर्म में स्वतः प्रमाण कैसे हो सकता है इसपर कहते हैं अनुपलब्ध इति०। (अनुपलब्धे) प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा अज्ञात (अर्थे) अर्थ में (उपदेशः) वेद वाक्य रूप जो प्रमाण है वह (अव्यतिरेकः) अर्थ का व्यभिचारी देखने में नहीं आता अतः (अनपेक्षत्वात्) इतर प्रत्यक्षादि की अपेक्षा न होने से (तत्) विधि घटित वाक्य धर्ममें स्वतः प्रमाण है यह बात बादरायणाचार्य को अनुमत है। यह भाव कि 'पर्वतो- वह्निमान्' यह वाक्य दोष वाले पुरुष से प्रयुक्त होकर अर्थ का व्यभिचारी होता है इसलिए प्रामाण्य के निश्चय में प्रत्यक्षादि की अपेक्षा करता है। उसी प्रकार " अग्निहोत्रंजुहोति " यह वाक्य कालत्रय

अत इतरनिरपेक्षं धर्मे प्रमाणमिति ॥ ५ ॥

शब्दस्य नित्यत्वम् । अधि० ६ ।

कर्मैके तत्र दर्शनात् ॥ ६ ॥

पूर्वाधिकरणे शब्दार्थयोः सम्बन्धोनित्य इत्युक्तंतच्च शब्द नित्यत्वाधीनमिति तत्सिषाधयिषुः प्रथमं शब्दानित्यत्ववादि मतम् पूर्वपक्षमुपपादयति । कर्मेति । एकेनैयायिकाः कर्म अनित्यम् शब्दम् वदन्ति तत्र शब्दविषयकप्रयत्नदर्शनात् यद्विषयः प्रयत्नःसोऽनित्य इति व्याप्तेः ॥ ६ ॥

में भी अर्थ का व्यभिचारी नहीं हो सकता । इसलिए इतर निरपेक्ष होकर धर्म में स्वतः प्रमाण है ॥ ५ ॥

शब्द नित्यत्व सिद्ध करते हैं— कर्मैके० । पूर्व अधिकरण में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य है ऐसा कथन किया और वह शब्द के नित्यत्व के आधीन है अतः उसकी सिद्धि करने की इच्छावाले जैमिनि प्रथम पूर्वपक्ष रूप शब्द को अनित्यत्व मानने वालों के मत को उपपादन करते हैं । कर्मेति (एके) कोई एक नैयायिक (कर्म) शब्द को कार्य मानते हैं अर्थात शब्द को अनित्य कथन करते हैं । क्योंकि (तत्र) शब्द में (दर्शनात्) प्रयत्न की विषयता देख पड़ती है अर्थात् शब्द विषयक प्रयत्न देखने में आता है । जो वस्तु यत्न साध्य होती है वह अनित्य होती है यह नियम है ॥ ६ ॥

अस्थानात् ॥ ७ ॥

किं च अस्थानाद् अस्थिरत्वात् शब्दस्योच्चारण क्षणादूर्ध्वमनुपलब्धेरिति भावः ॥ ७ ॥

करोतिशब्दात् ॥ ८ ॥

किं च करोतिशब्दात् । यथा घटं करोति तथा शब्दं करोतीति अनित्यव्यवहारात् ॥

सत्वान्तरे यौगपद्यात् ॥ ९ ॥

इतोऽप्यनित्य इत्याह । सत्वान्तरइति । देशान्तरइत्यपि· पूरणीयं । तथा च देशान्तरे अन्यदेशस्थे सत्वान्तरे प्राण्यन्तर

स्थिर न होनेसे शब्द अनित्य है । शब्दकी अपने उच्चारण काल से पीछे उपलब्धि नहीं होती अतः अनित्य है ॥

देवदत्त शब्द करता है ऐसे व्यवहार का विषय होने से शब्द अनित्य है । कुलाल घट को बनाता है ऐसे व्यवहार का विषय घट अनित्य देखा जाता है । उसी प्रकार देवदत्त शब्द को करता है, ऐसे व्यवहार का विषय होने से घट की तरह शब्द भी अनित्य है ॥ ८ ॥

इस अन्य हेतु से भी शब्द अनित्य है ऐसा कहते हैं । सत्वान्तर इति । देशान्तर इसको भी सूत्र में पूर्ण करना चाहिए (सत्वान्तरेच) इस देश तथा अन्य देश स्थित पुरुष में (यौगपद्यात्)

प्रत्यक्षे यौगपद्यमेककालिकत्वं दृष्टं। अयं भावः यथा लाघवान्नित्यत्वं तथा तेनैव हेतुनाशब्दे एकत्वमपि सेत्स्यति। इत्थं च एकस्य वस्तुनः अपकृष्टपरिमाणस्य सन्निकृष्टविप्रकृष्ट-पुरुषप्रत्यक्ष युगपद् भवति इदमेकत्वे नित्यत्वेऽनुपपन्नमतोऽनित्यः शब्दो नानाचेति ॥ ९ ॥

कात्स्न्येंनावगन्तुं योग्यम्मविभुत्वम् यथा घटः।
अकात्स्न्येंनावगन्तुं योग्यं विभुत्वं यथा आकाशम्ः ॥

एक ही काल में उपलब्धि होने से शब्द अनित्य है अर्थात् इस पुरुष तथा अन्य पुरुष का प्रत्यक्ष ज्ञान एक काल में देखा गया है। भाव यह है कि जैसे लाघव से शब्द नित्य है वैसे ही उसी हेतु से शब्द एक है यह भी सिद्ध होगा। इस प्रकार अविभू परिमाण वाले एक वस्तु का समीप तथा दूर स्थित पुरुषों को प्रत्यक्ष ज्ञान एक काल में होता है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान शब्द को एक और नित्य मानने पर नहीं हो सकता। इसलिए शब्द अनित्य तथा नाना है ॥ ९ ॥

घट का पूर्ण रूप से ग्रहण होता है इसलिए अविभु है। आकाश का पूर्ण रुपसे ग्रणह नहीं होता इसलिए विभु है।



प्रकृतिविकृत्योश्च ॥ १० ॥

इतोऽपि तथेत्याह । प्रकृतीति । प्रकृति विकृतिभावोपलब्धेः शब्दोऽनित्यः । दध्यत्र दधि अत्रेति प्रकृतिस्थितौ प्रकृतिभूतेकारस्थाने यकाररूपो विकारो भवति यस्याः प्रकृतेः विकारः सोऽनित्य इति व्याप्तिरितिभावः ॥ १० ॥

वृद्धिश्च कर्तृभूम्नाऽस्य ॥ ११ ॥

कर्तृभूम्ना कर्तृबाहुल्येनास्य शब्दस्य वृद्धिः महत्वं दृश्यते अतोऽप्यनित्यः । पुरुषप्रयत्नस्य शब्दव्यंजकत्वपक्षे व्यंजकसहस्रेणापि व्यंग्यस्य वृद्धिर्न दृश्यते यथा दीपसहस्रेणापि घटस्य । अतः व्यंजकत्वपक्षोऽयुक्त इति भावः ॥ ११ ॥

(च) और (प्रकृतिविकृत्योः) प्रकृति विकृति भाव की उपलब्धि होने से शब्द अनित्य है। दधि अत्र इस प्रकार प्रकृति की स्थिति होने पर प्रकृति रूप इकार के स्थान में यकार रूप विकार होता है। यदि शब्द नित्य होता तो इकार के स्थान में यकार न होता परन्तु ऐसा होता है इससे पाया जाता है कि शब्द अनित्य है। और जिस प्रकृति का विकार होता है वह अनित्य होता है। यह नियम है। यह भाव है ॥१०॥

और शब्द कर्त्ताओंकी अधिकतासे शब्दका बढ़ना देखपड़ता है इससे भी अनित्य है। पुरुष प्रयत्न शब्द का व्यंजक है। इस पक्ष में व्यंजक सहस्र से भी व्यंग्य का बढ़ना नहीं देख पड़ता। जैसे दीपकों के सहस्र से भी घट नहीं बढ़ता। इसलिए व्यंजकत्व पक्ष अयुक्त है। यह भाव है ॥ ११ ॥

समं तु तत्र दर्शनम् ॥ १२ ॥

एवं व्यंजकत्व बहूनि दूषणान्युक्तानि क्रमेण परिहर्तुं प्रक्रमते। सममिति। मतद्वयइति क्षणमिति च शब्दद्वयं पूरणीयं मतद्वये क्षणं क्षणमात्रं दर्शनं शब्दप्रत्यक्षं सममविवादम् ॥१२॥

सतः परमदर्शनं विषयानागमात् ॥ १३ ॥

समत्वेऽपि कतमः पक्षो वरिष्ठ इति प्रश्ने व्यंग्यत्वपक्षो

इस प्रकार व्यंजकत्व पक्ष में बहुत दूषण कथन किये गये हैं उन्होंका खंडन करनेके लिए प्रारंभ करतेहैं। सममिति। मतद्वये और क्षणं इन दो शब्दों को सुत्र में पूर्ण करना चाहिए। नित्य और अनित्यवादी इन दोनों के मत में क्षणमात्र शब्द का प्रत्यक्ष समान होता है इसमें कोई विवाद नहीं। तात्पर्य यह कि अनित्य वादियों के मत में शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है और नित्य वादियों के मत में प्रयत्न से प्रकट होता है इसलिए उत्पत्ति और प्रकट होने से आगे के क्षण में शब्द का दर्शन दोनों मतों में समान है। सार यह है कि यदि प्रयत्न से शब्द की उत्पत्ति की तरह उसकी प्रकटता मानी जाय तो प्रयत्न से उत्तर काल में शब्द का प्रत्यक्ष होना उसकी अनित्यता का साधक नहीं होता इसलिए शब्द प्रयत्न से प्रकट होने के कारण नित्य है ॥ १२ ॥

समानता होने पर भी कोनसा पक्ष श्रेष्ठ है ? इस प्रश्न के

युक्त इत्याह । सत इति । सतः सर्ववादिविद्यमानस्य परं पूर्वोत्तरकाले अदर्शनं प्रत्यक्षाभावः संस्कर्त्तुः व्यंजकस्य विषयं शब्दं प्रत्यनागमात् । अयंभावः । स एवायं गकार इति प्रत्यभिज्ञानाद् लाघवाच्च शब्दो नित्यः मुखोद्भूतवायुसंयोगविभागाः शब्दप्रत्यक्षप्रतिबंधकीभूतं स्तिमितवायुं दूरीकुर्वन्तीति ततः प्रत्यक्षमिति अस्थानादित्यस्योत्तरम् ॥ १३ ॥

प्रयोगस्य परम् ॥ १४ ॥

करोतिशब्दादित्यस्योत्तरमाह । प्रेति । शब्दं करोतीत्यत्र करोतिपदं प्रयोगस्य उच्चारणस्य परं तत्तात्पर्यकम् ॥ १४ ॥

होने पर व्यंग्यत्व पक्ष युक्त है ऐसा कहते हैं । सत इति (सतः) विद्यमान शब्द का (परं) पूर्व तथा उत्तर काल में सर्ववादियों को जो प्रत्यक्ष का अभाव होता है वह (विषय) शब्द के संस्कर्ता व्यंजक के न रहने से होता है । भाव यह कि वही यह गकार है ऐसी प्रत्यभिज्ञा होने से तथा लाघव से शब्द नित्य है, शब्द के प्रत्यक्ष का प्रतिबंधक स्वरूप स्तिमित=स्थिर वायु को मुख से उत्पन्न वायु का संयोग विभाग दूर करते हैं तब प्रत्यक्ष होता है यह " अस्थानात् " इसका उत्तर है ॥ १३ ॥

देवदत्त शब्द को करता है इस अर्थ में करोति पद नहीं आया किन्तु (प्रयोगस्य) उच्चारण के (परं) तात्पर्य से आया है अतएव शब्द नित्य है ॥ १४ ॥

आदित्यवद्यौगपद्यम् ॥ १५ ॥

सत्वान्तरे यौगपद्यादित्यस्योत्तरमाह । आदित्यवदिति । यथा एकः सूर्यः नानादेशस्थैः युगपदीक्ष्यते तथा आदित्यवद् महान् शब्दो न सूक्ष्म इति भावः ॥ १५ ॥

शब्दान्तरमविकारः ॥ १६ ॥

प्रकृतिविकृत्योश्चस्योत्तरमाह । शब्दान्तरमिति । इकारस्थाने यकारः शब्दान्तरमन्यः शब्दः न इकारस्य विकारः तृणानां कट इव तथा सति कटकर्त्रा नियमेन तृणसम्पादनवत्

सत्वान्तर इस पूर्व पक्ष का उत्तर कहते हैं । आदित्यवदिति (यौगपद्यम्) एक ही शब्द का नाना देशों में एकही काल में उपलब्ध होना (आदित्यवत्) सूर्य की तरह जानना चाहिए। जैसे एक सूर्य नाना देशस्थ पुरुषों से एक ही कालमें देखा जाता है वैसे ही शब्दभी नाना देशस्थ पुरुषोंसे देखा जाताहै । आदित्य के समान शब्द महान् है सूक्ष्म नहीं यह भाव है ॥ १५ ॥

"प्रकृतिविकृत्योश्च" इसके उत्तरको कहतेहैं । शब्दान्तरमिति । इकार के स्थान में यकार (शब्दान्तरम्) इकार से भिन्न शब्द है जैसा कि तृणों का विकार कट है दूध का विकार दधि है वैसा इकार का विकार यकार नहीं । यदि यकार इकार का विकार होता तो चटाई आदि का बनाने वाला नियम से जैसे तृण दुग्ध

यकारं प्रयुञ्जन् नियमेन इकारमादद्यात् इति भावः ॥ १६ ॥

नादवृद्धिःपरा ॥ १७ ॥

वृद्धिश्चेत्यस्य उत्तरमाह । नादेति । पराअतिशयिता शब्दवृद्धिरिति भ्रमविषया नादवृद्धिः । बहुभिः भेरीमाघ्नद्भिः वर्णात्मकशब्दमुच्चारयद्भिर्वा महान् शब्द इत्युपलभ्यते । तत्र परमेत प्रतिपुरुष शब्दावयवा उत्पन्नाः सन्तः तूल महत्ववच्छब्दे महत्त्वं सम्पादयन्तीति वक्तुमशक्यम् । परमते

आदि का संग्रह करता है वैसे ही यकार के लिये नियम से इकार का ग्रहण करना यह भाव है ॥ १६ ॥

"वृद्धिश्च" इस पूर्वपक्ष का उत्तर देते हैं । नादेति । (परा) उच्चारण कर्त्ताओं की अधिकता से अत्यन्त शब्द बढ़ता है इस भ्रमात्मक ज्ञान का विषय नादवृद्धि है । भेरी को बजाने वाले तथा वर्णात्मक शब्द का उच्चारण करने वाले बहुत पुरुषों द्वारा महान् शब्द हुआ ऐसी उपलब्धि होती है । रुई के अवयव जैसे रुई में महत्व को उत्पन्न करते हैं वैसा परमत में प्रतिपुरुष से उत्पन्न होकर शबदावयव शब्द में महत्वं उत्पन्न करते हैं ऐसा कथन करने को अशक्य है । क्योंकि परमत में शब्द गुण होने से निरवयव है । और निरवयव होने से उच्चारण कर्त्ताओं की अधिकता से बढ नहीं सकता, इसलिये अन्य गति न होने से

शब्दस्य गुणत्वेन निरवयवत्वादतः अगत्या कर्णशष्कुलीमण्डलस्य सर्वां सरणिं व्याप्नुवद्भिः संयोगविभागैः नैरन्तर्येण असकृत् ग्रहणाद् महानिवावयववानिवच प्रतीयते। संयोगविभागा नादपदवाच्याः तेषामेव वृद्धिरितिभावः ॥ १७ ॥

नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात् ॥ १८ ॥

एवं परप्रतिपादित दूषणान्युद्धृत्य स्वमते साधकं वक्तुं प्रक्रमते। नित्य इति। शब्दः नित्यः स्याद् दृष्यते व्यज्यते शब्दोऽनेनेति दर्शनमुच्चारणं तस्य परार्थत्वाद् अन्यस्यार्थस्य

कर्ण शष्कुलीमण्डल की सम्पूर्ण सराणि को व्याप्त करने वाले वायवीय संयोग विभाग के द्वारा व्यवधान रहित अनेक बार ग्रहण होने से शब्द महान् और अवयववाला की न्याईं प्रतीत होता है। वायवीय संयोग विभाग नाद पद के अर्थ हैं। उन्हीं की वृद्धि होती है शब्द की नहीं ॥ १७ ॥

इस प्रकार शब्द की नित्यता में अनित्यवादियों ने जो दूषण कथन किये थे उनका समाधान करके अब अपने मत में उसकी नित्यता के साधक को कथन करने के लिए उपक्रम करते हैं। नित्यइत्यादि सूत्र से। शब्द नित्य है (तु) अनित्य नहीं क्योंकि (दर्शनस्य) जिसके द्वारा शब्द प्रकट हो इस व्युत्पत्ति से दर्शन नाम उच्चारण का है उसका उच्चारण (परार्थत्वात) श्रोता के

प्रतिपत्त्यर्थत्वात् । अनित्यत्वे श्रौतुरर्थप्रतिपत्तिपर्यन्तं न तिष्ठतीति प्रतिपत्तिर्न स्यात् कारणाभावादिति भावः ॥ १८ ॥

सर्वत्र यौगपद्यात् ॥ १९ ॥

किंच सर्वत्र गोशब्दमात्रे यौगपद्यात् अबाधितप्रत्यभिज्ञाया युगपदुत्पत्तेः स एवायं गकार इति युगपदनेकेषां भवति न ह्यनेके युगपद् भ्रान्ताअभवन्निति भावः ॥ १९ ॥

संख्याभावात् ॥ २० ॥

दशकृत्वः गोशब्दोच्चारे दशवारमुच्चारितो गोशब्द इत्येव वदति न च दश गोशब्दा उच्चारिता इति । अतोऽपि

अर्थ ज्ञान के लिये है । अनित्य मानने पर तो शब्द श्रोता के अर्थज्ञान पर्यन्त नहीं रह सकता अतः अर्थ का ज्ञान नही होगा क्योंकि कारण का अभाव है । यह भाव है ॥ १८ ॥

किंच (सर्वत्र) यावत् गो शब्दों में (यौगपद्यात्) एक ही काल में अबाधित प्रत्यभिज्ञा के होने से शब्द नित्य है । यह वही गकार है इस प्रकार की प्रत्यभिज्ञा एक काल में अनेक पुरुषों को होती है और एक काल में अनेक पुरुष भ्रान्त हों यह संभव नहीं । यह भाव है ॥ १९ ॥

दस बार गो शब्द का उच्चारण होने पर दस बार गो शब्द का उच्चारण किया गया है ऐसा लोग बोलते हैं; दस गो

शब्दो नित्य इत्याह । संख्येति । शब्दे संख्याभावात् स्पष्टम् ॥ २० ॥

अनपेक्षत्वात् ॥ २१ ॥

इतोऽपि नित्य इत्याह । अनपेक्षत्वादिति । अनपेक्षत्वाद् शब्दनाशकारणस्य पामरादिसाधारण्येन ज्ञानाभावाद् यथा घटपटादिदर्शनमात्रे असमवायिकारणादिनाशान्नाश इति निश्चिनोति तथा पामरादिसाधारणानां शब्दे नाशकारणनिश्चयाभावान्नित्य इति भावः ॥ २१ ॥

शब्द का उच्चारण किया है ऐसा नहीं बोलने । इससे भी शब्द नित्य है ऐसा कहते हैं । संख्येति । शब्द में संख्या की प्रतीति का अभाव होने से सूत्रार्थ स्पष्ट है ॥ २० ॥

इस हेतु से भी शब्द नित्य शब्द है ऐसा कहते हैं । अनपेक्षत्वादिति । (अनपेक्षत्वाद्) शब्द नाश के कारण का पामरादि साधारणों को ज्ञान न होने से शब्द नित्य है । जैसे घटपटादि के दर्शनमात्र होने पर असमवायिकारण आदि के नाश से घटपटादि का नाश होगा ऐसा सर्वसाधारण को निश्चय होता है वैसा पामरादि साधारणों को शब्द में नाश के कारण का निश्चय न होने से शब्द नित्य है यह भाव है । सारांश यह है कि शब्द न तो उत्पन्न होता है और न नाशको प्राप्त होता है किन्तु प्रकट अप्रकट होता है अतएव नित्य है ॥ २१ ॥

प्रख्याभावाच्च योग्यस्य ॥ २२ ॥

ननु शब्दो वायुपरमाणुप्रकृतिकः तदीयसंयोगैरुत्पन्नत्वात् तथा च शिक्षा। "वायुरापद्यते शब्दतामिति" । वायुपरमाणु-प्रकृतिकत्वादनित्य इत्याशंकायामाह । प्रख्येति । योग्यस्य श्रोत्रेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयस्य शब्दस्य प्रख्याभावात् । वायुविकारस्य श्रोत्रेन्द्रियाग्राह्यत्वादितिभावः ॥ २२ ॥

लिंगदर्शनाच्च ॥ २३ ॥

लिंगेति। वेदे च शब्द नित्यत्वे लिंगदर्शनाच्छब्दोनित्यः वाचाविरूप नित्ययेति मन्त्रे नित्यया वाचेति लिंगम् ॥ लिंगम्

ननु, शब्द वायु परमाणुका कार्य है क्योंकि वायु के संयोग विभागों से उत्पन्न होता है और ऐसा मानने में शिक्षा प्रमाण है कि वायु शब्द भाव को प्राप्त होता है । इसलिए वायु परमाणु का कार्य होने से अनित्य है । इस आशंका के होने पर कहते हैं । प्रख्येति० । (योग्यस्य) श्रोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय शब्द वायुपरमाणु का कार्य है इस व्यवहार का अभाव होने से । वायु के कार्य का श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं होता और शब्द का होता है अतः शब्द वायु का कार्य नहीं यह भाव है ॥ २२ ॥

लिंगेति० और वेद में भी शब्द की नित्यता में लिंग

नामान्यपरं सदन्यार्थं द्योतकं वाक्यं इयं च श्रुतिरग्निस्तुतिपरासतीवाचोनित्यत्वं द्योतयतीति लिंगं भवतीति। विरुपा च शानित्या चेति विग्रहः। रुपयतीति रुपं कर्त्ता। विगतं रुपं यस्या इति कर्त्तृरहितेत्यर्थः। अतएव नित्यावागित्यर्थः ॥२३॥

वेदस्यार्थप्रत्यायकत्वम्। अधि० ७।

उत्पत्तौ वा रचनाः स्युरर्थस्याताम्निमित्तत्वात् ॥२४॥

एवं शब्दस्य शब्दार्थ संबंधस्य च नित्यत्वेऽपि चोदना धर्मे न प्रमाणमित्याक्षिपति। उत्पत्ताविति०। उत्पत्तौपदार्थज्ञा-

---

पाया जाता है इससे भी शब्द नित्य है। वाचा० ते० सं० २।६।११।२ इत्यादि मंत्र में नित्ययावाचा यह लिंग है। अन्य का प्रतिपादन करता हुआ अन्य अर्थ के द्योतक वाक्य का लिंग है। यह श्रुति अग्नि की स्तुति को प्रत्तिपादन करती हुई वाणी की नित्यता का द्योतन करती है अतः यह श्रुति वाक्य लिंग है। "कार्यंरुपयति करोति" इस व्युत्पत्ति से रुप नाम कर्ता का है। विगत है रुप जिसका उसका नाम विरुप है कर्त्ता रहित यह अर्थ है। कर्त्ता रहित होने से ही वाणी नित्य है ॥ २३ ॥

वेद को अर्थ बोधकत्वं कहते हैं। उत्पत्तौ०। एवं इस प्रकार शब्द और शब्दार्थ के संबन्धकी नित्यता होने पर भी वेद-वाक्य धर्म में प्रमाण नहीं हो सकता। अब यह पूर्वपक्ष कहते हैं।

नोत्पत्तौ सत्यां वाक्यवाक्यार्थयोः संबंधा रचनाः पुरुषकल्पिताः स्युः अर्थस्य वाक्यार्थज्ञानस्य अतत्पदार्थज्ञान निमित्तात् भिन्नं निमित्तं कारणं यस्य तत्वात् । न हि पदार्थ एव वाक्यार्थः । अतः पदस्य पदार्थे यथा शक्तिसबन्धः तथा पदसमूहरुप वाक्यस्य वाक्यार्थे न शक्ति संबन्धः किंत्वन्यः स च पुरुष-कल्पित इति कृत्रिमःकथं धर्मप्रमाणमिति पूर्वपक्षसूत्राभिप्रायः।२४

तद्भूतानां क्रियार्थेन समाम्नायोऽर्थस्य तन्निमित्तत्वात् ॥२५॥

सिद्धान्तमाह । तद्भूतानामिति । तेषु अग्निहोत्राद्यर्थेषु

उत्पत्ताविति । (उत्पत्तौ) पदार्थ ज्ञान की उत्पत्ति होने पर वाक्य तथा वाक्यार्थ का संबंध (रचना) पुरुषकल्पित होगा । क्योंकि जिस कारण सामग्री से पदार्थ ज्ञान होता है उससे भिन्न (निमित्तं) कारण सामग्री से वाक्यार्थ ज्ञान होता है । क्योंकि पदार्थ ही वाक्यार्थ नहीं किन्तु विलक्षण है । इसलिए जैसें पद का पदार्थ में शक्तिरुप संबंध है वैसा पदसमूह रुप वाक्य का वाक्यार्थ में शक्ति सबन्ध नहीं किन्तु भिन्न है और वह पुरुषकल्पित है अतः अनित्य है । और पुरुषकल्पित कृत्रिम संबंध की अपेक्षा रखने वाले "अग्निहोत्रं जुहोति" इत्यादि वेदवाक्य धर्म में स्वतंत्र प्रमाण कैसे हो सकते हैं ? यह पूर्वपक्ष सूत्र का अभिप्राय है ॥ २४ ॥

अब सिद्धान्त को कहते हैं । तद्भूतानां इति । उन अग्नि-

क्लृप्तानां प्रत्येकपदानां क्रियार्थेन क्रियावाचिना पदेनसह समाम्नायः पठनं दृश्यते अतः क्रियावाचकपदघटितपदसमूहादेव वाक्यार्थग्रहः स च नाऽपूर्वोऽर्थस्य वाक्यार्थज्ञानस्य तन्निमित्तत्त्वात् तत्पदार्थज्ञानं निमित्तंकारणं यस्य तत्त्वात्। अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इत्यत्र च अग्निहोत्रनामकहोमेन स्वर्गं भावयेदिति वाक्यार्थज्ञानं न पदार्थोपस्थितिमन्तरा भवति किन्तु पदादुपस्थितानामर्थानां योग्यतया परस्परसंबंधज्ञानमेव

होत्रादि अर्थों में निश्चत प्रत्येक पदों का (क्रियार्थेन) क्रियावाची पद के साथ (समाम्नायः) पाठ देखने में आता है और सहपाठ होने के कारण क्रियावाचक पद से घटित पदों का समूहरुप वाक्य से ही वाक्यार्थ का ज्ञान होता है और वह अपूर्व नहीं क्योंकि (अर्थस्य) वाक्यार्थज्ञान की उत्पत्ति में (तन्निमित्तत्वात्) तत्=पदार्थ ज्ञान ही एक कारण है अन्य नहीं इसलिए वाक्य और वाक्यार्थ के सम्बन्ध मानने की कोई आवश्यकता नही। " अग्निहोत्रं जुहुयात स्वर्गकाम " इत्यादि वेदवाक्य में अग्निहोत्र नामक होम द्वारा स्वर्ग को संपादन करे। यह वाक्यार्थज्ञान पदार्थज्ञान के बिना नहीं होता किन्तु पद से उपस्थित अर्थों का योग्यता द्वारा जो परस्पर संबंध ज्ञान है वही वाक्यार्थ ज्ञान है और अर्थों का परस्पर सम्बन्ध क्रियापद के सन्निधान से स्वयं उपस्थित हो जाता है। उसकी उपस्थिति के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं इसलिए वेद वाक्य अपने अर्थ का बोध कराने में किसी

वाक्यार्थज्ञानमिति भावः ॥ २५ ॥

लोके सन्नियमात् प्रयोगसन्निकर्षः स्यात् ॥ २६ ॥

ननु पदैः पदार्थस्य ज्ञानं संभवेत् नतु वाक्यार्थस्य तस्य पदार्थानां संबंधरुपत्वेनाऽपूर्वत्वादित्यत आह। लोक इति। यथा लौकिकशब्दे वृद्ध व्यवहारेण पदार्थं दृष्ट्वा सन्नियमात् वाक्यप्रयोगे पदार्थज्ञानपूर्वकं वाक्यार्थज्ञानं स्यात्। तथा वेदेऽपि गुरुपरम्परया पदार्थं दृष्ट्वा वाक्यप्रयोगेण वाक्यार्थस्य सन्निकर्षः उपपत्तिः स्यात् ॥ २६ ॥

वेदस्यापौरुषेयत्वम् ॥ अधि० ८ ।

अन्य की अपेक्षा न रखने से धर्म में स्वतः प्रमाण है। यह भाव है ॥ २५ ॥

परन्तु पदों से पदार्थ का ज्ञान हो सकता है, वाक्यार्थ का नहीं क्योंकि वह पदार्थों का सम्बन्धरुप होने से अपूर्व है। इस शंका पर कहते हैं—लोक इति। जैसे लौकिक शब्द में वृद्धों के व्यवहार द्वारा पदार्थ को देखकर (सन्नियमात्) वाक्य के प्रयोग से पदार्थज्ञानपूर्वक वाक्यार्थ का ज्ञान होता है वैसे ही वेद में भी गुरुपरम्परा द्वारा पदार्थ को देखकर वाक्य के प्रयोग से वाक्यार्थज्ञान की (सन्निकर्ष) उत्पत्ति होती है ॥ २६ ॥

वेद अनित्य तथा पौरुषेय है इसलिए धर्म में स्वतः प्रमाण

वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः ॥ २७ ॥

वेदस्यानित्यत्वात् पौरुषेयत्वात् धर्मे न प्रमाणं पुरुषदोष संभवादिति पुनराक्षिपति । वेदानिति । यतो वेदे पुरुषाख्याः काठकं कौथुममिति पुरुषघटिताः आख्याः नामानि सन्त्यतः सन्निकर्षमाधुनिकं सादीन् । असमानवचनत्वं चिन्त्यं विस्तरभयात् बालबोधार्थत्वान्न लिख्यते । एके नैयायिका आहुः ॥ २७ ॥

अनित्यदर्शनाच्च ॥ २८ ॥

इतोप्यनित्य इत्याह । अनित्येति । अनित्यानां जननमरणवतां पुरुषाणां, बबरः प्रावाहणिरकामयत कुसुरुविंद औद्दालकिरकामयतेत्यादि वेदेषु दर्शनात् तेषां पुरुषाणां जननात्

नहीं हो सकता क्योंकि पुरुषदोष का संभव है । इस पूर्वपक्ष को फिर करता है । वेदानिति । जिस कारण वेद में (पुरुषाख्या) काठक, कौथुम इत्यादि पुरुष घटित (आख्या) नाम हैं इसलिए वेद (सन्निकर्ष) आधुनिक अर्थात सादि हैं । असमान वचनता विचारणीय है । विस्तार के भय से तथा बालबोधार्थ होने से लिखा नहीं । एक नैयायिक कहते हैं ॥ २७ ॥

इस हेतु से भी वेद अनित्य हैं ऐसा कहते हैं । अनित्येति । (अनित्यानाम्) जन्म मरण वाले पुरुषों की (बबरः तै.सं. ७।१।१०।२) इत्यादि वेदमंत्रों में (दर्शनात) कथा पाई जाती

प्राग् इमानि वाक्यानि नासन्निति सादित्वादनित्यत्वं पौरुषेयत्वं सिद्धम् ॥ २८ ॥

उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम् ॥ २९ ॥

सिद्धान्तमाह । उक्तमिति शब्दे पूर्वत्वं नित्यत्वमुक्तम् साधितं प्राक् शब्दे नित्यत्वे सिद्धे वेदेऽपि नित्यत्वं वाचा विरुपनित्ययेत्यप्युक्तम् ॥ २९ ॥

आख्या प्रवचनात् ॥ ३० ॥

आख्या काठकादिसमाख्या प्रवचनादध्ययनेन कठेनाधीतं

हैं । इस कारण उन पुरुषों के जन्म से प्रथम ये वाक्य नहीं थे । अतः सादि होने से अनित्य है और अनित्य होने से पौरुषेयत्व सिद्ध होता है ॥ २८ ॥

अब सिद्धान्त को कहते । उक्तमिति । हम शब्द में पूर्वत्व अर्थात् नित्यत्व (उक्तम्) प्रथम सिद्ध कर आए हैं और शब्द में नित्यता सिद्ध होने के बाद " वाचाविरुपनित्यया " इस वाक्य में लिंग पाया जाने के कारण वेद में भी नित्यत्व सिद्ध होता है । यह भी कह आए हैं तो फिर उसके पौरुषेय अर्थात अनित्य होने की आशंका ही निरर्थक है । अतएव वेद अपौरुषेय अर्थात् नित्य है अनित्य नहीं ॥ २९ ॥

(आख्या) वेद में काठकादि समाख्या=नाम (प्रवचनात्)

काठकमित्युपपन्ना ॥ ३० ॥

परं तु श्रुतिसामान्यम् ॥ ३१ ॥

यद्यपि बर्वरः प्रावाहणिरित्यास्ति परं तु श्रुतिः प्रावाह-ण्यादिशब्दः सामान्यमन्यार्थस्यापि वाचकं। प्रेत्यस्य उत्कर्षाश्रयः वहनशब्दस्य गतिः इकारस्य कर्त्ता तथा च उत्कृष्टगत्याश्रयः नापत्यार्थः प्रत्ययः तथा च वायुपरः स चानादिः बर्वर इति वायुशब्दानुकरणमिति नानुपपत्तिगन्धोऽपि ॥ ३१ ॥

कृते वा नियोगः स्यात्कर्मणः संबंधात् ॥ ३२ ॥

ननु "जरद्गवः कम्बलपादुकाभ्यां द्वारिस्थितो गायति

अध्ययन अध्यापन के कारण आए हैं अर्थात् कठेनाधीतं अध्यापितं वा व्युत्पत्ति से समाख्या उपपन्न=सिद्ध होती है ॥ ३० ॥

यद्यपि बर्वरः प्रावाहणिः यह वाक्य है तो भी (परंतु श्रुतिः) प्रावाहणि आदि शब्द (सामान्यं) अन्य अर्थ का भी वाचक है। प्र इस पद का अर्थ उत्कर्ष आश्रय वहन शब्द का गति इकार का कर्त्ता अर्थ है तथा च उत्कृष्ट गत्याश्रय यह वाक्यार्थ हुआ। अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं है तथा च प्रावाहणि शब्द वायु प्रतिपादक है और वह अनादि है और बर्वर यह पद वायु के शब्द का अनुकरण है। इस प्रकार अनुपपत्ति की गन्ध भी नहीं ॥ ३१ ॥

ननु वृद्ध बलिवर्द कम्बल पादुकों के सहित द्वार में स्थित

भद्रकाणि। तं ब्राह्मणी पृच्छति पुत्रकामा राजन् रुमायां लशुनस्य कोऽर्घे"। इति वद्वेदे गावो वा एतत्सत्रमासतेत्यादीनाम संबद्धप्रलापानां सत्वात् कथं वेदः प्रमाणमत्राह। कृतइति। कर्मणः कर्म प्रतिपादकवाक्यस्य संबंधात् परस्पर साकांक्षपदघटित्वाद् गावो वा इत्यादीनामपि कृते कर्मणि स्तुतिद्वारा विनियोगःअयंभावः। य एवं विद्वांसः संवत्सरमुपयन्त्यनार्त्या इति अनेन संवत्सरसाध्यसत्रयागः कार्य इत्युक्ते केनेत्युक्ते होमेनेति कस्मै आर्तिनाशाय कथमितिज्योतिष्टोमो वैश्वानरोऽतिरात्र इत्यादिरीत्या सर्वंसंबद्धम्। तत्समीपे गावः सत्रमासतेति

हुआ कल्याण जनक गान को गाताहै उससे पुत्रकामनावाली ब्राह्मणी प्रश्न करती है कि हे राजन्! रुमा में=लवणखान में लहसुन की क्या कीमत है? इस वाक्य के समान वेद में "गावोवा एतत्सत्रमासत" तै. सं. ७।५।१।१ गौवों ने इस सत्र को किया था इत्यादि असम्बद्ध बोलने वाले वाक्यों के होने से वेद कैसे प्रमाण हो सकता है? इस पर कहते हैं। कृतइति (कर्मणः) कर्म प्रतिपादक वाक्यका संबंध होनेसे सानिध्य होनेसे परस्पर साकांक्ष पद विशिष्ट होने से असम्बद्ध प्रलापित नहीं और "गावो वा" इत्यादि वाक्यों को भी कृत में=स्तुति द्वारा विनियोग=अन्वय है। भाव यह है कि "य एवं" इस वाक्य से संवत्सर साध्य सत्र याग करना चाहिए। ऐसा उक्त होने पर किससे इस आकांक्षा के होने पर होम से किसलिए पीड़ा नाश के लिए कैसे करना।

न स्वार्थतात्पर्यकं किं तु गवादयः जडाअपि कर्मानुष्ठानं चक्रुः किमुत विद्वांसः अनुतिष्ठेरन्नित्यत्रासंशय इति स्तुतौ तात्पर्यं तस्मात्सर्वं संबद्धमिति ॥ ३२ ॥

इति जैमिनिसूत्रवृत्तौ प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥१॥



इस आकांक्षा के होनेपर "ज्योतिष्टोम वैश्वानर अतिरात्र इत्यादि" यागों की रीति से करना। इसलिए सम्पूर्ण वेदवाक्य संबद्ध हैं। उस विधि के समीप "गावः सत्रमासत" इस वाक्य का स्वार्थ में तात्पर्य नहीं है किन्तु गौ आदि जड अर्थात् अज्ञानी हैं तो भी कर्मानुष्ठान किये थे तो विद्वान कर्मानुष्ठान करता है इसमें क्या कहना। अर्थात् इस विषय में संशय नहीं इस स्तुति में तात्पर्य है इसलिए सब वेदवाक्य संबद्ध हैं॥ ३२ ॥

इति जैमिनि सूत्रवृत्त्यनुवादे प्रथमस्या प्रथमपादः ॥ १ ॥

जैमिनी सूत्रवृत्ति अनुवाद का प्रथम अध्याय का प्रथमपाद
॥ समाप्त हुआ ॥ १ ॥



अर्थवादप्रामाण्यम् । अधि० १ ।

आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां
तस्मादनित्यमुच्यते ॥ १ ॥

विधेर्धर्मे प्रामाण्यं व्यवस्थापितम् । अथार्थवादानां धर्मे प्रामाण्यमस्ति न वेति संशये पूर्वपक्षमाह । आम्नायस्येति । आम्नायस्य वेदस्य क्रियार्थत्वात्प्रवृत्त्याद्यर्थत्वादतदर्थानां प्रवर्त्तक विध्याद्यघटितानां सिद्धवस्तु कथनरुपाणां वायुर्वैत्यादीनामानर्थक्यंप्रवृत्त्याद्यजनकत्वं यतोऽतस्तस्मादनित्यं धर्मप्रमित्यजनकमुच्यते ॥ १ ॥

अर्थवादों के प्रामाण्य का प्रथम अधिकरण है विधिवाक्यका धर्म में प्रामाण्य है ऐसा निश्चित किया जा चुका है । अत्र अर्थवाद वाक्यों को धर्म में प्रामाण्य है किंवा नहीं, इस संशय के होने पर पूर्वपक्ष को कहते हैं । आम्नायस्येति । (आम्नायस्य) वेद (क्रियार्थत्वात) कर्म अर्थात कर्त्तव्य का बोधक है अतएव (अतदर्थानां) जो वेदवाक्य प्रवर्त्तक विधि आदिओं से अघटित सिद्ध वस्तु का कथनरुप (वायुर्वा) इत्यादि जो वेद वाक्य हैं वे (आनर्थक्यं) प्रवृत्यादि के अजनक जिस कारण से हैं (तस्माद्) उसी कारण (अनित्यं) धर्मज्ञान के अजनक अर्थात् अप्रमाण (उच्यते) कहे जाते हैं ॥ १ ॥

शास्त्रदृष्टिविरोधाच्च ॥ २ ॥

इतोऽपि न प्रमाणमित्याह । शास्त्रेति । शास्त्रविरोधात् दृष्टिविरोधात् शास्त्रदृष्टिविरोधाच्च भूतार्थप्रमाणत्वमपि नार्थवादानामित्यर्थः । शास्त्रेण विरोधो यथास्तेनं मनोऽनृतवादिनी वागिति सिद्धार्थस्य केवलस्य श्रूयमाणस्य निष्फलतया मनः स्तेनं वाचमनृतां कुर्यादिति विधिः कल्प्यः तथा च "न चोरयेत्" "नानृतं वदेत् इति शास्त्रविरुद्धम् । तथा दृष्टिः प्रत्यक्षप्रमाणं तद्विरुद्धं तस्माद् धूम एव अग्नेर्दिवा ददृशइति वाक्यस्थैवकारेण वह्निदर्शनं नेति प्रति पादितं प्रत्यक्ष विरुद्धम् । तथा कोहितद्वेद यद्यमुष्मिल्लोकेऽस्तिवानवा इति स्वर्गे संशयपरं

इसपेभी अर्थवाद धर्ममें प्रमाण नहीं ऐसा कहतेहैं । शास्त्रेति । शास्त्र के साथ, प्रत्यक्ष के साथ तथा शास्त्रदृष्टि के साथ विरोध होने से सिद्धार्थ का बोधकत्वरुप प्रमाणत्व भी अर्थवादों को नहीं यह अर्थ है । शास्त्रके साथ विरोध जैसे स्तेन मन और अनृतवादिनी वाक् है इस प्रकार केवल श्रूयमाण सिद्धार्थ का फल न होनेसे मनको चोर करना वाणी को झूंठी करना इस प्रकार विधि की कल्पना करनी होगी तथा च "न चोरयेत, नानृतं वदेत्" यह शास्त्र से विरुद्ध है । तथा दृष्टि नाम प्रत्यक्ष प्रमाण का है उससे विरुद्ध "तस्मात्" इत्यादि वाक्यस्थ एवकार से अग्नि का दर्शन नहीं होता यह प्रतिपादन है । वह प्रत्यक्ष से विरुद्ध है । तथा "कोहि" इत्यादि स्वर्ग विषयक संशयपरक वाक्य शास्त्र दृष्टि

वाक्यं शास्त्रदृष्टिविरुद्धम् "स्वर्गकामो यजेत" इति शास्त्रांतर्गत स्वर्ग पदजन्य तदवगति विरुद्धमित्यर्थः ॥ २ ॥

तथा फलाभावात् ॥ ३ ॥

दूषणान्तरमाह । तथेति दूषणान्तरद्योतकं फलाभावात् । गर्ग त्रिरात्रब्राह्मणे शोभतेऽस्य मुखं य एवं वेद ता० ब्रा. २०।१६।६ इति श्रुतं कुमुखस्यैतज्ज्ञानेन मुखं न शोभते अतः फलाभावो दृष्ट इति भावः ॥ ३ ॥

आनर्थक्यात् ॥ ४ ॥

पूर्णाहुतिमुत्तमां जुहोति सर्वमेवाप्नोतीति श्रवणात्पूर्णा-

के साथ विरुद्ध है । स्वर्गकामोयजेत इस शास्त्रान्तर्गत जो स्वर्ग पद है उससे उत्पन्न उसके ज्ञान के साथ विरुद्ध है ॥ २ ॥

'तथा' यह पद और दोषों का प्रकाशक है । फल का अभाव होने से भी सिद्धार्थ के बोधक वेदवाक्य अप्रमाण हैं । गर्गत्रिरात्रब्राह्मण में शोभने० इत्यादि पढे गए हैं । कुमुख का मुख गर्गत्रिरात्रब्राह्मण के ज्ञान से शोभित नहीं होता अतः फल का अभाव दृष्ट है यह भाव है ॥ ३ ॥

"पूर्णाहुतिमुत्तमां सर्वमेवाप्नोति" तै. ब्रा. ३।८।१० यह वाक्य पूर्णाहुति से सब फलों का लाभ कथन करता है तथा

हुत्यैव सर्वफललाभ तद्व्यतिरिक्तानां यावतां कर्मणां वैयर्थ्यमित्यभिप्रायेणाह । आनेति । आनर्थक्याद् वैयर्थ्यात् ॥ ४ ॥

अभागिप्रतिषेधात् ॥ ५ ॥

लोके केनचित् प्राप्तस्य निषेधो दृश्यते अर्थवादे अत्यन्तमप्राप्तार्थनिषधो 'न पृथिव्यां, न दिवि, नान्तरिक्षे चिन्वीतेत्यत' स्वार्थे अप्रमाणं सद्धर्मे कथं प्रमाणं भवेदित्याह । अभागीति । अभागिनः अत्यन्तमप्राप्तस्य ॥ ५ ॥

सति उससे भिन्न यावत् अग्निहोत्रादि कर्मों का स्वर्गादि फल के लिए विधान व्यर्थ हो जायगा परन्तु प्रवृत्ति या निवृत्ति के बोधक होने से विधिवाक्य सर्वथा प्रमाण हैं और निरर्थक होने से सिद्धार्थ के बोधक वाक्य प्रमाण नहीं ॥ ४ ॥

लोक में किसी से प्राप्त अर्थ का निषेध देखा जाता है और अर्थवाद वाक्य में अत्यन्त अप्राप्त अर्थ का निषेध " न पृथिव्यां " इत्यादि वाक्य में पाया जाता है । इसलिए अपने अर्थ में अप्रमाण होकर धर्म में प्रमाण कैसे हो सकता है ऐसा कहते हैं —अभागीति—अप्रतिषेध्य तथा अत्यन्त अप्राप्त अर्थ का निषेध करने से " न पृथिव्यां " इत्यादि वाक्य अप्रमाण है । वहां पृथिवी में विहित होने से चयन अप्रतिषेध्य है, अंतरिक्ष तथा द्यौलोक में अप्राप्त है यह विवेक है ॥ ५ ॥

अनित्यसंयोगात् ॥ ६ ॥

पूर्वं बर्वरः प्रावाहणिरिति जन्मवत्पुरुषसंयोगाद्वेदा अनित्या इति योऽयमापेक्षं प्रकृतपूर्वपक्षोपोद्धलकत्वेन अनुवदति। अनित्येति। पूर्वं व्याख्यातम् ॥ ६ ॥

विधिना त्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्यर्थेन विधीनांस्युः ॥ ७ ॥

सिद्धान्तमाह। विधिनेति। विधीनां विधिविषयाणां

"बर्वरप्रावाहणि" इत्यादि वाक्य का जन्म मरण वाले पुरुषों के साथ वाचकतानिरुपित वाच्यता संबंध से संयोग होने के कारण वेद अनित्य हैं, यह आक्षेप जो पूर्वपक्ष में किया था उसी आक्षेप को प्रकृत पूर्वपक्ष का पोषक होने से अनुवाद करते हैं। अनित्येति। इस सूत्रका व्याख्यान पूर्वही किया गया है। ६

सिद्धान्त को कहते हैं। विधिनेति। (विधिनां) विधि वाक्य के विषय अर्थात् "वायव्यंश्वेतमालभेत" इस वाक्य से कथन किये गये वायुदेवादिओं की (स्तुत्यर्थेन) स्तुति की अपेक्षा करने वाले विधिवाक्य के साथ मिलकर विधेय की स्तुति करते हुए अर्थवाद वाक्य धर्म में प्रमाण हैं। अर्थात विधिवाक्य को पुरुष की प्रवृत्ति के लिये अपने विधेय अर्थ की स्तुति अपेक्षित है और सिद्ध वाक्य को किसी फल की आकांक्ष

वायव्यं श्वेतमालभेतेति विहितवायुदेवतादीनां स्तुत्यर्थे
स्तुतिसापेक्षेण विधिना वाक्यैकवाक्यत्वाद् विधेयं स्तुवन्त
अर्थवादाः धर्मे प्रमाणानि स्युः अयं भावः । यथाऽऽर्थभाव

है, इसलिए वह फल वाले विधि वाक्य के साथ मिलकर वि
वाक्य को अपेक्षित विधेयार्थ की स्तुति करता हुआ कर्तव्यार्थ क
ही विधान करता है सिद्धार्थ का नहीं, यह अर्थ वाक्यैक वाक्यत
से प्राप्त होता है जैसाकि "वायव्यंश्वेतमालभेत" तै सं. २।१।
भूति की कामना वाले पुरुष को वायु देवता का याग करना
चाहिए, यह विधि वाक्य है और "वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता" वायु
अत्यन्त शीघ्रगामी देवताहै, इत्यादि सिद्धार्थके बोधकवाक्य है और
विधि वाक्य को वायुदेवता के याग में पुरुष की प्रवृत्ति के लिए
वायु की स्तुति अपेक्षित है क्योंकि पुरुष जब तक वायु के
स्वभाव को न जाने तब तक उसको उसके याग से भूति फल
के लाभ का निश्चय नहीं होता और निश्चय न होने से वह दृढता
पूर्वक उसके याग में प्रवृत्त नहीं हो सकता और सिद्धार्थ के बोधक
वाक्यों को फलकी आकांक्षा है क्योंकि "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः"
द्विजाति मात्र को वेद पढना चाहिये, यह विधि फल वाले अर्थ
में पर्य्यवसायी वाक्यों का अध्ययन कराती है निष्फलों का नहीं
और विधि वाक्य की न्याई इनमें किसी फल का श्रवण नहीं
होता इसलिए यह दोनों वाक्य "नष्टाश्वदग्धरथन्याय" से
परस्पर मिलकर अपने अर्थ का बोधन कराते हैं भिन्न भिन्न नहीं,

नांशत्रयवती तथा शब्द भावनाया अप्यंशत्रयं। साध्याकांक्षायां पुरुषप्रवृतिःसाध्यतयान्वेति करणाकांक्षायां लिंगादिश्रवणं लिंगादिश्रवणेन केवलेन पुरुषप्रवृत्त्यसंभवात् सहकारितया स्तुतिमपेक्षते

मिलकर बोधन कराने से दोनों वाक्यों की आकांक्षा निवृत्त हो जाती है अर्थात् पुरुष वायु के स्वरुप कों जानकर शीघ्रही उसके याग में प्रवृत्त हो जाता है और सिद्धबोधक वाक्य भी विधि वाक्य के साथ मिलकर अर्थ का बोधन कराने से निराकांक्ष हो जाता है। इन दोनों वाक्यों का मिलकर यह अर्थ हुआ कि जिस कारण वायु अत्यन्त शीघ्रगामी देवता है इसी कारण भुति की कामना वाला पुरुष श्वेत पशु का याग करे। यह भाव है कि जैसे आर्थी भावना अंशत्रयी वाली है वैसे ही शाब्दी भावना के भी तीन अंश है। साध्य की आकांक्षा होने पर पुरुषप्रवृत्ति साध्य रूप से अन्वित होगी तथा करण की आकांक्षा होने पर लिङ्गादिका श्रवण करणत्व रूपसे अन्वित होगा। केवल लिङ्गादि के श्रवण से पुरुषकी प्रवृत्ति होना असंभव है। इसलिए सहायक रुप से विधिवाक्य स्तुति की अपेक्षा करता है। उसका समर्थक होकर अर्थवादवाक्य विधिवाक्य केसाथ एकवाक्यता को प्राप्त होता है। एक वाक्य का दूसरे वाक्य के साथ मिलकर अर्थ को बोधन करने का नाम वाक्यैकवाक्यता है। दो रथी किसी गांव को जाते थे। दैवयोग से एक का अश्व बिजली से नष्ट हो गया और दूसरे का रथ अग्निसे जलगया। ऐसा होनेपर जो दोनों ने परस्पर

तदर्पकतयार्थवादः विध्येकवाक्यतामापद्यत इति ॥ ७ ॥

तुल्यं च साम्प्रदायिकम् ॥ ८ ॥

ननु अर्थवादवाक्यानि पूर्वोक्तयुक्त्या पौरुषेयाणि वेदेषु संपातायातानित्यत्राह। तुल्यं चेति। (साम्प्रदायिकं) गुरुपरम्परासम्प्रदायप्राप्तम् स्वाध्यायविधिपरिगृहीतत्वानध्यायपाठाभावादिरूपधर्मपालनादिकं (तुल्यं) विध्यर्थवादयोः तुल्यं। अतः न सम्पातायातम् । ८ ॥

अप्राप्ता चानुपपत्तिः प्रयोगे हि विरोधः स्याच्छब्दार्थस्त्वप्रयोगभूतस्तस्मादुपपद्येत ॥ ९ ॥

मिलकर रथपर बैठ ग्रामान्तर जाने का कार्य सिद्ध किया इसका नाम "नष्टाश्वदग्धरथन्याय" है ॥ ७ ॥

ननु, अर्थवादवाक्य पूर्व में कथन की गई युक्ति द्वारा पौरुषेय हैं ऐसा सिद्ध होता और वेदों में उनका पाठ किसी के प्रक्षेप करने से पाया जाता है इस पर कहते हैं। तुल्यंचेति। (साम्प्रदायिक) अनादि काल से विधिवाक्य तथा सिद्धार्थ बोधक के वाक्यों की गुरुपरम्परारूप संप्रदाय द्वारा प्राप्ति होना और स्वाध्याय विधि परिगृहीतत्व तथा अनध्याय में पठन पाठन का अभावादि रूप धर्म का पालनादिक (तुल्यं) विधि तथा अर्थवाद वाक्यों में समानता है कोई विशेषता नहीं। इसलिए प्रक्षेप से नहीं आए है ॥ ८ ॥

शास्त्रदृष्टिविरोधादित्यत्र शास्त्रविरोधस्य परिहारमाह। अप्राप्तेति। पूर्वोक्तशास्त्रविरोधो नानृतं वदेदित्यादिना सविरोधः (प्रयोगे) विधिकल्पनयाऽनृतवदनं कर्तव्यमिति तात्पर्ये सति स्यात्। नैवमस्ति विधिकल्पनाया अनभ्युपगमात्। शब्दार्थः अनृतावागिति अप्रयोगभूतः अप्रयोजकः विरोधे अतोऽस्मन्मते ऽनुपपत्तिः विरोधरूपा अप्राप्ता तस्मात् अनुपपत्यभावात् स्तुतिनिन्दादि तात्पर्यकः अनृत वादिनि वागित्यादि सर्वः शब्दः उपपद्यते ॥ ९ ॥

गुणवादस्तु ॥ १० ॥

"शास्त्रदृष्टिविरोधात्" इस दूसरे सूत्र में कथन किये हुए शास्त्र विरोध का परिहार करते हैं। अप्राप्तेति। नानृतंवदेत् इत्यादि वाक्य द्वारा जो पूर्व में शास्त्र विरोध कहा गया था वह विरोध (प्रयोगे) विधि की कल्पना करके झूठ बोलना चाहिये इस अर्थ में तात्पर्य के होने पर हो सकता है। परन्तु इस अर्थ में तात्पर्य नहीं, क्योंकि विधि की कल्पना का अनङ्गीकार है और अनृतावाक् है यह शब्दार्थ विरोधमें अप्रयोगभूत=अप्रयोजक है इस कारण हमारे मत में विरोध रुप अनुपपत्ति प्राप्त नहीं (तस्मात्) अनुपपत्ति का अभाव होने पर स्तुति तथा निन्दादि में तात्पर्यवाले "अनृतवादिनीवाक्" इत्यादि वाक्य विरोध रहित अर्थवाद सिद्ध होते हैं ॥ ९ ॥

ननु विधिनात्विति सूत्रे अर्थवादस्य विधेयस्तावकत्वमुक्तं तत्क्वचिद्व्यभिचरति यथा वेतसशाखया वकाभिश्च विकर्षतीति वेतसशाखावकयोर्विधिः "आपोवैशान्ताः" तै. सं. ५।४।४ इति अपांचस्तुतिः उदासीनायामिदम् कथमत्राह। गुणेति। गुणस्यविधेयकारणगतगुणस्य वादः कथनं वेतसशाखावकयोः कारणमापः तद्वृत्ति गुणकथनेकारणगुणाः कार्यगुणान् आरभंत इति न्यायेन कार्येऽपि तद्गुणसत्वं ज्ञायत इति तस्यापि स्तुतिरिति भावः ॥ १० ॥

ननु, "विधिनातु" इस सूत्र में अर्थवाद को विधेय का स्तावकत्व है ऐसा कथन किया गया है वह कहीं पर व्यभिचारी होता है अर्थात् उससे भिन्नार्थ की भी स्तुति करता है। जैसे "वेतसशाखया" तै. स. ५।४।४।३। इस वाक्य से अग्निनामक स्थण्डिल का विकर्षण में वेतसशाखा और अवका की विधि है "आपोवैशान्ता" तै० सं० ५।४।४।२ इस वाक्य से जलसमूह की स्तुति की गई है उदासीन अर्थ में स्तुति करने से इस वाक्य को प्रामाण्य कैसे होसकता है इसपर कहतेहैं। गुणेति। गुण=विधेय के कारणगुण का वाद=कथन है अर्थात् वेतसशाखा अवका का कारण जल है उस जल वृत्ति के गुण के कथन होने पर कारण गुण कार्य के गुणों को उत्पन्न करते हैं, इस न्याय से कार्य में भी उन गुणों की विद्यमानता ज्ञात होती है। इस प्रकार से उस वेतसशाखा तथा अवका की भी स्तुति है ॥ १० ॥

रूपात् प्रायात् ॥ ११ ॥

ननु परद्रव्यापहरणरूपस्तेया भावात् स्तेनेमनासि "स्तेनं मन" इति वाक्येन स्तेनाभेदप्रतिपादनं तथाऽनृत वदनैक स्वभावाभावात् वाचि "अनृतवादिनी वागिति" वाक्येनानृत वदनैकस्वभावत्व प्रतिपादनं बाधितार्थं गौरश्वइतिवत् मम पिता ब्रह्मचारी इतिवच्चात्राह। रूपादिति । रूपात् स्तेन वृत्तरूपाद्धर्मवत्वात् स्तेनेन चोरेण सहाभेदं प्रायात् प्राप। अयं भावः। चतुर्थपादे वक्ष्यमाणो यथाऽऽदित्यो यूप इति आदित्यवृत्तिरूपवत्त्वेन अभेदं प्राप तथा स्तेने यथा प्रच्छन्नसंचारस्तथा

ननु, परके=दूसरे के द्रव्य का अपहरणरूपस्तेय का अभाव होने से चोर से भिन्न मन है उसमें "स्तेनंमनः" इस वाक्य द्वारा चोर से अभेद का कथन तथा वाणी में केवल झूठ बोलने का अभाव होने से "अनृतवादिनीवाक्" इस वाक्य से वाणी में एक झूठ बोलने का स्वभाव है सत्य का नहीं यह कथन बाधितार्थ है, गौ से अभिन्न अश्व तथा मेरा पिता ब्रह्मचारी है इत्यादि वाक्यों के समान इसपर कहते हैं। रूपादिति। रूपात= स्तेनवृत्तरूप=स्तेनसंचरित रूप से=स्तेन के धर्मवाला होने से स्तेन अर्थात् चोर के साथ अभेद को प्राप्त होता है। यह भाव है कि चतुर्थपाद में आगे कहा जायगा जैसे "आदित्योयूपः" इस वाक्य में यूप आदित्यवृत्ति रूप से अभेद को प्राप्त होता है वैसा ही स्तेन में जैसे प्रच्छन्नसंचार है वैसा मन में होने

मनसि सत्त्वाद्भेदप्रयोग औपचारिक इति । प्रायाच्चानृतवादि-
नीवाक् ॥ ११ ॥

दूरभूयस्त्वात् ॥ १२ ॥

दृष्टिविरोधं परिहरति । दूरेति । दिवा दूरदेशस्थस्य धूम
एव दृश्यते न वह्निरिति न दृष्टेर्विरोधः । वह्नेर्दिवादर्शनमि-
सूत्रे पूरणीयम् ॥ १२ ॥

स्त्र्यपराधात् कर्तुश्च पुत्रदर्शनम् ॥ १३ ॥

प्रवरानुमंत्रणविधिसमीपे "न चैवं विद्मः ब्राह्मणा

से गुण योग से अभेद प्रयोग है और वाणी बहुधा अनृत
बोलने के स्वभाव वाली है ॥ ११ ॥

दृष्टि विरोध का समाधान करते हैं । दूरेति० । दिन में
अत्यन्त दूर देशस्थ अग्नि का धूम ही देखा जाता है अग्नि नहीं,
अतः प्रत्यक्ष विरोध नहीं । वह्नि का दिन में अदर्शन होता है,
इसको सूत्र में प्रवेश करना चाहिए । अधिक दूर होने से वह्नि
का दिन में अदर्शन होता है यह सूत्रार्थ है ॥ १२ ॥

प्रवर में मंत्र जप की विधि है । उसके समीप में "न
चवंविद्मः" गोप० ब्रा० १।२१ यह वाक्य पठित है । प्रत्यक्ष
द्वारा ब्राह्मणत्व का निश्चय होने पर संशय का कथन करना

वयमब्राह्मणा वेति श्रुतम्" गोप० ब्रा० ५।२१। प्रत्येक्षण निश्चिते ब्राह्मणत्वे संशयकथनं प्रत्यक्षविरुद्धमुक्तं परिहरति। स्त्र्यपराधादन्यजातीयपुरुषयोगेनापि कर्त्तुः पुत्रत्वमन्यजात्युत्पन्नपुत्रत्वं तस्य दर्शनं संभावनमस्ति अतः ब्राह्मणा अब्राह्मणा वेति विचिकित्सासंभवः। अयं अर्थवादः आर्षेयं वृणीतइति विधिशेषस्तावकः ॥ १३ ॥

आकालिकेप्सा ॥ १४ ॥

कोहि तद्वेद यद्यमुष्मिन् लोकेऽस्तिवान वेति दिक्ष्वतीकाशान्

प्रत्यक्ष विरुद्ध सूत्र २ में कहा गया था उसका परिहार करते हैं। (स्त्र्यपराधात्) माता के व्यभिचार का संभव होने से भिन्न जातीय पुरुष के द्वारा भी जनयिता को पुत्रत्व=अन्य जाति से उत्पन्न पुत्रत्व उसकी संभावना हो सकती है। इसलिए हम ब्राह्मण अथवा अब्राह्मण हैं सो नहीं जानते। यह संशय होना संभव हैं। नचैवंविद्मः यह अर्थवाद है "आर्षेयंवृणीते" इस विधि का अंग जो "देवाः पितरः" इत्यादि मन्त्र हैं उसका स्तावक है। अर्थात् अपनी ब्राह्मणी भार्या में ब्राह्मण से उत्पन्नत्व स्वरूप ही ब्राह्मण्य होता है वह ब्राह्मण्य इस मंत्र के जप द्वारा अब्राह्मण यजमान को भी उत्पन्न हो जाता है इस प्रकार मंत्र की स्तुति की जाती है ॥ १३ ॥

"कौन उसको जानता है जो परलोक में स्वर्ग है अथवा

करोतीति । तै० सं० ६।१।१।१ साकांक्षत्वादस्यविधेः शेषः ज्योतिष्टोमे प्राग्वंशशालायाः परिश्रयणं विहितं प्रथमं अमुष्मिन् लोके स्वर्गोऽस्तिनवा को वेद इदानीम् धूमस्य मुखादिषु प्रवेशे सद्यो मरणम् भविष्यतीति धूम निर्गमनार्थं चतुर्दिक्षु द्वाराणि करोतीति वाक्याभिप्रायः । तत्र ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकाम इत्युक्त्वा स्वर्गोऽस्ति न वेति कथनं शास्त्रविरुद्धम् कथमुक्तमिति आक्षेपे उत्तरमाह । आकालिकेति । आकालिकस्य तत्कालोद्भवस्य सुखस्य दुःखनिवृत्तेर्वेप्साइच्छा सर्वानुभवसिद्धा।

नहीं" यह वाक्य "चारों तरफ से द्वार करे" इस विधि का शेष है क्योंकि साकांक्ष है । ज्योतिष्टोम में प्राचीन वंश नामक यज्ञ मंडप का प्रथम परिश्रयण=आवरणका विधान किया गया है। परलोक में स्वर्ग होता है अथवा नहीं कौन उसको जानता है। वर्त्तमान समय में धूम का मुखादि में प्रवेश होने पर शीघ्र ही मरण होगा इसलिए धूम निगमनार्थ चारों दिशाओं में द्वारों को करना चाहिए । यह वाक्य का अभिप्राय है । तहां "ज्योतिष्टोमेनस्वर्गकामः" ऐसा कहकर स्वर्ग है अथवा नहीं यह संशय कथनशास्त्र से विरुद्ध कैसे कहा गया है इस आक्षेप के होने पर उत्तर को कहते हैं । आकालिकेति । आकालिक अर्थात् वर्त्तमान काल में होने वाला सुख अथवा दुख की निवृत्ति उसकी इच्छा सर्वानुभव सिद्ध है । इस इच्छा को लेकर बहुत काल के पश्चात होने वाले स्वर्ग को निन्दा द्वारा द्वारनिर्माण की यह वाक्य स्तुति

तां गृहीत्वा कालान्तरभाविस्वर्गनिन्दया द्वारकरणमावश्यकमिति स्तौति चेदं वाक्यम् ॥ १४ ॥

विद्याप्रशंसा ॥ १५ ॥

शोभतेऽस्य मुखं य एवं वेदेति गर्गत्रिरात्रविधिस्तावक- मित्याह। विद्येति। गर्गत्रिरात्रवेदनस्येदं फलं किमुत तदनुष्ठान- इति विद्याया वेदनस्य प्रशंसा तद्द्वारा क्रतुस्तुतिः ॥ १५ ॥

सर्वत्वमाधिकारिकम् ॥ १६ ॥

पूर्णाहुत्या सर्वे कामा इति शेष वैयर्थ्यमित्यस्योत्तरं

करता है द्वार निर्माण का अदृष्ट स्वर्गफल अनिश्चित होने पर भी धूम परिहार प्रत्यक्ष फल होने के कारण निश्चित है। इसलिये द्वारकरण आवश्यक है ॥ १४ ॥

जो इसको जानता उसका मुख शोभित है ता० ब्रा० २०।१६।६ यह वाक्य गर्गत्रिरात्र ब्राह्मण (वेदभाग) विषयक विधान का स्तावक है ऐसा कहते हैं। विद्या इत्यादि से। गर्गत्रिरात्र ब्राह्मण का जानना भी मुख शोभा का कारण है उसका अनुष्ठान मुख शोभा के हेतु है यह बात कहने की आव- श्यकता क्या? इस प्रकार ज्ञान की स्तुति की गई है और उसके द्वारा कर्म की प्रशंसा होती है ॥ १५ ॥

एक कार्य के सर्वफल प्रदान करने पर दूसरे कर्म व्यर्थ हो

सर्वत्वमिति। श्रूयमाणं सर्वत्वमाधिकारिकम् औपचारिकं। यथा सर्वमन्नं शुद्धमित्यत्र सर्वपदं गेहस्थान्नमात्रपरं तथा सर्वपदं प्रकृतक्रतुसाध्यफलपरं यच्च क्रतुसाध्यंफलं तत्पूर्णाहुत्यनुष्ठानेन

जाते हैं यह प्रतिपादन करने के निमित्त जो पूर्णाहुति द्वारा सर्व कार्य (प्रार्थनीवस्तु) पाई जाती है यह उदाहरण प्रदर्शित हुआ है, उसके उत्तर में सूत्र कहते हैं। सर्वत्वमिति। सर्व काम पाये जाते हैं यह जो श्रूयमाण सर्व शब्द है यह आधिकारिक=औपचारिक अर्थात प्रस्तावित विषय को सम्पूर्णता बोधक है। जैसे सब अन्न शुद्ध है इस वाक्य में सर्व पद से घर में स्थित समस्त अन्न समझा जाता है जगत् का समस्त अन्न नहीं समझा जाता इसी प्रकार "पूर्णाहुत्यासर्वेकामः" इस वाक्य में सर्वपद प्रस्तुत याग से साध्य समस्त फल का बोधक है। यह भाव है कि पूर्णाहुति द्वारा कर्म का सांगत्व सम्पादित होता है इस कारण जिस कर्म में जो फल संभावित है वह समस्त फल हो उस पूर्णाहुति द्वारा पाया जायगा, उसके बिना नहीं प्राप्त होगा। इस प्रकार "पूर्णाहुति जुहोति" इस विधि का स्तावक है। एक कर्म की पूर्णाहुति उस कर्म के संपन्न करने के कारण उस कर्म का समस्त फल दे सकती है, दूसरे कर्मों का फल नहीं दे सकती है। पूर्णाहुति न देने से अग्न्याधान विफल हो जाता है वह विफलता पूर्णाहुति द्वारा निवारित होती है यह एक काम है। आधान समाप्त होने पर आहवनीयादि अग्नि समस्त अग्नि

विना न भवति इति पूर्णाहुति विधिस्तावक इति भावः ॥१६॥

फलस्य कर्मनिष्पत्तेस्तेषां लोकवत्परिमाणतः
फल विशेषः स्यात् ॥ १७ ॥

इदं समाधानं शेषवैयर्थ्यपरिहारक्षमं न भवत्यानर्थक्यादिति फलवादत्वमभ्युपगम्योक्तत्वादिति समाधानान्तरमाह। फलस्येति फलस्य स्वर्गादेः कर्मतः क्रियया निष्पत्तेः तेषाम् कर्मणां

होत्रादि कर्म में उपयुक्त होती है यह दूसरा एक काम है उस कर्म से वह वह फल पाया जाता है यह और एक काम है ॥१६॥

यह समाधान शेषवैयर्थ्य के परिहारमें समर्थ नहीं हो सकता क्योंकि पूर्णाहुति के फल को अंगीकार करके "आनर्थक्यात्" यह सूत्र कहा गया है। अतः अन्य समाधान कहते हैं। फलस्येति। स्वर्गादि फल की पूर्णाहुति तथा अग्निहोत्रादि गुरु लघु कर्म द्वारा स्वर्गादि फल की सिद्धि का श्रवण होने से उन कर्मों के परिमाणतः=अल्पत्व तथा भूयस्त्व के कारण फल में विशेष लघु तथा गुरु भाव लोक के समान होता है। लोक में अल्प क्रिया से अल्प भृति=अल्प पगार होता है और कर्म के गुरुत्व होने पर अधिक पगार होता है तथा पूर्णाहुति द्वारा अल्पकाल भोग्य स्वर्ग होता है और ज्योतिष्टोम से चिरभोग्य स्वर्ग होता है अतः शेष को वैयर्थ्य नहीं यह भाव है। कोई इस सूत्र की ऐसी व्याख्या करते हैं कि पूर्णाहुति अंग कर्म

परिमाणतः फले विशेषो लघुगुरुभावः स्यात् लोकवत्। लोकेऽल्प क्रिययाऽल्पभृतिः गुरुत्वे कर्मणः भृत्याधिक्यम् तथा पूर्णाहुत्या अल्पकालभोग्यः स्वर्गः ज्योतिष्टोमेन चिरभोग्य इति न शेष वैयर्थ्यमिति भावः ॥ १७ ॥

है उसका फल श्रुति अर्थवाद होवे किन्तु पशुबन्ध याजि सर्वाँल्लोकानभिजयति " पशुबन्ध याजि सर्वलोक जय करता है। इस स्थान में पशुबन्ध विहित मुख्य कर्म है सर्वलोक जय भी मुख्य फल है। इस कारण इसको अर्थवाद अर्थात् प्रशंसा मात्र नहीं कहा जा सकता इस कारण पशुबन्ध याग में समस्त फल पाने से अन्य कर्म वृथा होते हैं यह निवारण नहीं किया गया। इस आशंका के होने पर कहते हैं। फलस्येति। कर्म के द्वारा फल निष्पन्न होताहै किन्तु अन्य कर्म द्वारा उस फलका परिमाणाधिक्य संपादित होता है जैसे लोक में देखा जाता है। यही सूत्र का अर्थ है। पृथ्वी अन्तरिक्ष द्यूलोक इसके मध्य में अन्यतम लोकाऽभिजय रूप फल पशुबन्ध कर्म द्वारा निष्पन्न होता है उस पृथिव्यादि जयरूप फल का कर्मान्तर द्वारा परिमाणाधिक्य संपादित होता है लोक में जैसा देखा जाता है यह उसका दृष्टान्त है। जैसे एक मुद्रा द्वारा खारी (परिमाण विशेष) परिमित शस्य=कृषी मोल लेकर फिर अन्य मुद्रा द्वारा और भी कितने शस्य खरीदने पर पूर्वशस्य के परिमाणं की वृद्धि होती है, इसी प्रकार अन्य कर्म द्वारा पशुबन्ध कर्म के फल का परिमाणाधिक्य साधित होता है ॥ १७ ॥

अन्त्ययोर्यथोक्तम् ॥ १८ ॥

अन्त्ययोः अभागि प्रतिषेधादिति अनित्यसंयोगादिति सूत्रयोः समाधानम् यथोक्तं पूर्वोक्तं ज्ञेयं। स्वार्थे अप्रामाण्येऽपि "रुक्ममुपदधाति" इति विधेयस्तावकतया प्रावाहणिरित्यस्य-त्वेनवायुपरत्वं चोक्तमिति भावः ॥ १८ ॥

विधिवन्निगदाः। अधि. २।

विधिर्वा स्यादपूर्वत्वाद्वादमात्रं ह्यनर्थकम् ॥ १९ ॥

औदुम्बरो यूपो भवतीति तै० सं० २।१।१।६ अत्रौदुम्बरत्वमूर्ग्पशुरूपफलमुद्दिश्य विधीयतउतातिदेशप्राप्तयूपमुद्दिश्य विधीयते किंवा अर्थवाद इति संशये पूर्वपक्षमाह। विधिरिति।

पांचवें व छठवें सूत्रों में कथन किए गए अन्त के दोनों पूर्वपक्षों का समाधान "यथोक्तं" जैसा पूर्व ३।१।७ में कथन कर आए हैं वैसा ही जानना चाहिए। स्वार्थ में प्रामाण्य न होने पर भी "रुक्ममुपदधाति"=हिरण्य रखकर चयन करे, इस विधि के विधेय हिरण्य का स्तावक होने से और "प्रावाहणि" इसको वायु परक होने से समाधान कहा गया है यह भाव है ॥ १८ ॥

अब विधिवाक्य के समान अत्यन्त स्पष्ट अर्थ वाले सिद्धार्थ बोधक वेद वाक्य की प्रमाणता सिद्ध करने के लिए द्वितीय अधिकरण किया जाता है। औदुम्बर यूप करे यह पढ़ा

वा शब्द एवार्थे। फलमूर्जं पशूनाप्नोतीति अंशप्रतिपादितमुद्दिश्य उदुंबरत्वस्य विधिरेवस्यात् नार्थवादः अपूर्वत्वाद् गुणफलयोर्जन्यजनकभावस्याप्राप्तत्वात्। नन्वर्थवादोऽस्त्वत आह वादेति। वादमात्रमर्थवादमात्रं चेत् स्वार्थाप्रतिपादकतया अनर्थकं व्यर्थं यत्र सर्वथाऽगतिः तत्र लक्षणयास्तावकत्वं प्रकृते तथा नेति भावः ॥ १९ ॥

लोकवदिति चेत् ॥ २० ॥

है। इस वाक्य में औदुम्बरत्व बलवान पशुरूप फल को उद्देश करके विधान किया जाताहै अथवा "प्रकृति वद् विकृतिः कर्तव्या" इस वाक्य से प्राप्त यूप को उद्देश करके विधान किया जाता है किंवा अर्थवाद है इस संशय के होने पर पूर्वपक्ष को कहते हैं। विधिरिति। वा शब्द एव अर्थ में है "फलमूर्जं पशुनाप्नोति" तै० सं० २।१।१६ इस अंश मे प्रतिपादित उर्जं पशुओं को उद्देश करके उदुम्बरत्व का विधान ही है अर्थवाद नहीं। अपूर्व होने से=गुण=उदुम्बरत्वरूप गुण तथा फल=उर्कपशुरूप फल इन दोनों का किसी प्रमाण से जन्यजनक भाव की प्राप्ति न होने से। यदि कोई कहै कि अर्थवाद क्यों न माना जाय तो इसपर कहते हैं। वादेति। वादमात्रं=यदि अर्थवाद ही माना जाय तो अपने अर्थ का प्रतिपादक न होने से अनर्थक व्यर्थ अर्थात् अप्रमाण हो जावेगा। जिस स्थल में सर्वथा अगति है उस स्थल में स्तावकत्व माना जाता है प्रकृत में ऐसा नहीं है यह भावहै ॥१९

अस्मिन् पूर्वपक्षे सिद्धान्ती शङ्कते। लोकेति। अयं वादः लौकिकवादवदस्त्यतो न विधिरावश्यकः। यथा लोके गोविक्रयवेलायामियं गौस्संपन्नक्षीरा स्त्र्यपत्येति स्तुतिवाचकशब्दमपेक्षते त्वया क्रेतव्येति वाक्यं तथौदुम्बरो यूपो भवतीति स्तुतिवाचकशब्दमपेक्षते अतोऽर्थवादो न फलप्रतिपादकः ॥२०

न पूर्वत्वात् ॥ २१ ॥

दूषयति। नेति। नायंदृष्टान्तः संभवति सम्पन्नक्षीरादेः

इस पूर्वपक्ष में सिद्धान्ती शंका करता है। लोक इत्यादि ग्रंथसे। यह वाद लौकिकवाद की भांति है इसलिए विधि कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं (चेत्) यदि (इति) ऐसा कहा जाय तो ठीक नहीं इसका आगे के सूत्र से संबंध है। जैसे लोक में गौ को मूल्य लेते समय यह गौ बहुत दूध देती है और बछड़ी वाली है इस स्तुतिवाचक शब्द की अपेक्षा "त्वयाक्रेतव्या" यह वाक्य करता है वैसाही "औदुम्बरोयूपोभवति" तै० सं० २।१।१६ यह वैदिक वाक्य भी स्तुतिवाचक शब्द की अपेक्षा करता है, इसलिए "फलमूर्जं" इत्यन्त वाक्य अर्थवाद फल विधायक नहीं ॥ २० ॥

अब सिद्धान्ती की शंका का पूर्वपक्षी खण्डन करता है। न इत्यादि सुत्रसे। लौकिक बहुक्षीरादि वाक्यका दृष्टान्त दिया गयाहै

प्रत्यक्षादिगम्यत्वाद् विधिरप्रयोजक इति स्तुतौ पर्य्यवस्यं
इहतूर्कपशुत्वादि साधनत्वं न तथाऽतः शक्त्या फलजनकत्व
बोधसंभवे लक्षणया स्तुतिकल्पनं न युक्तमिति भावः ॥ २१॥

उक्तं तु वाक्यशेषत्वम् ॥ २२ ॥

सिद्धान्तमाह । उक्तमिति । विधिनात्वेकवाक्यत्वादि

वह नहीं होसकता, क्योंकि बहुत क्षीरादि प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वा
ज्ञात हैं और ज्ञात की विधि नहीं होती इसलिए विधि अप्रयोज
होकर स्तुति में तात्पर्यवाली हो जाती है । वेदवाक्य में
बलवान् पशुत्वादि की साधनता प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा ज्ञा
नहीं इसलिए शक्ति से फलजनकताका बोध संभव होनेपर लक्ष
से स्तुतिकल्पना युक्त नहीं इसलिए उक्त वाक्य में विधि मान
आवश्यक है यह भाव है ॥ २१ ॥

अब पूर्वपक्ष का समाधान करते हैं । उक्तं इत्यादि सू
से । विधिनात्वेकवाक्यत्वाद् इस सूत्र में सिद्धार्थ बोधक वाक्य
को विधिवाक्य की अङ्गता उक्तं=कथन की गई है । अर्थवा
वाक्यों को विधेय अर्थ की स्तुति द्वारा विधिवाक्य के सा
एकवाक्यता कथन की गई है । इसी प्रकार विधिवाक्य की भां
प्रतीत होने वाले तथा निगद=अत्यंत स्पष्ट अर्थ वाले अर्थवा
वाक्यों को भी विधिवाक्य के साथ एकवाक्यता है । तथा च

सूत्रे वाक्यशेषत्वं विधिशेषत्वं । स्तुतिद्वारा विध्येकवाक्यत्वमुक्तं तथा च न निरर्थत्वमिति भावः ॥ २२ ॥

विधिश्चानर्थकः क्वचिदानर्थक्यं तस्मात् स्तुतिः प्रतीयेत
तत्सामान्यादितरेषु तथात्वम् ॥ २३ ॥

ननु शक्त्या विधिसंभवे लक्षणया स्तुतिकल्पनमन्याय्यमत आह । विधिरिति । क्वचिद्वाक्य विशेषे विधि विध्यर्थप्रवर्त्तनारूपः अनर्थकः संभवति यथा वायुर्वेक्षेपिष्ठा देवतेति वाक्ये वायौ क्षिप्रगामित्वविषयप्रवर्त्तनार्थः । वायुः क्षिप्रगामी कर्तव्य इति योज्यं तन्न संभवति वायोः क्षिप्रगामित्वस्य स्वभावसिद्धत्वेन

एकवाक्यता होने पर व्यर्थ हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता इसलिए इनमें विधि की कल्पना नहीं हो सकती यह भाव है ॥ २२ ॥

शक्ति से विधि संभव होने पर लक्षणा द्वारा स्तुति कल्पना करना अयोग्य है इस शंका के होने पर कहते हैं । विधिरिति । (क्वचित्) वाक्य विशेष में (विधिः) प्रवर्त्तना रूप विधि का अर्थ अर्थवाला नहीं हो सकता । जैसे " वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता " इस वाक्य में वायुनिष्ठ क्षिप्रगामित्व है तद् विषयक प्रवर्त्तनार्थ व्यर्थ है । विधि की कल्पना करके वायु को शीघ्रगामी बनाना चाहिए ऐसी योजना होगी परन्तु वह संभव नहीं क्योंकि शीघ्र-गामिता को स्वभावसिद्ध होने के कारण पुरुषप्रयत्न से साध्य

पुरुषकृत्यसाध्यत्वादित्याह । आनर्थक्यमिति । आनर्थक्यं विधावानर्थक्यं स्यात् स्तुतिः वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम इति विहितयागाङ्गभूतवायुदेवतास्तुतिः तत्समीपवृत्तित्वेन तस्माद्वाक्यात्प्रतीयेत निर्णीयेत। तत्सामान्यात् विधिसमीपवृत्तित्वसामान्यात् साजात्यात् इतरेषु "औदुम्बरो यूपो भवति" "यजमानः प्रस्तर" इत्यादिषु तथात्वं स्तावकत्वं स्तुतिवादत्वं प्रत्येतव्यं नतु प्रस्तरकार्ये यजमानो योज्य इति विधिपरमिति भावः ॥ २३ ॥

प्रकरणे च संभवन्नपकर्षो न कल्पेत
विध्यानर्थक्यं हि तं प्रति ॥ २४ ॥

ननु यो विदग्धः स नैर्ऋत इत्यत्र यो निर्ऋतियागः

नहीं यह बात कहते हैं। आनर्थक्यमिति। विधि में यह वाक्य अनर्थक हो जाता है अतः (स्तुतिः) "वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम" इस वाक्यसे विहित याग का अंगस्वरूप वायु देवता की स्तुति उसके समीप रहने के कारण उस वाक्य से निश्चय होती है। तत्सामान्यात्=विधिवाक्य के समीप वृत्तित्वरूप साजात्य से भिन्नों में=औदुम्बरो यूपो भवति, यजमानः प्रस्तर न इत्यादि में तथा त्वं=स्तावकत्वं=स्तुति का कथन जानना चाहिए, प्रस्तर का कार्यमें यजमान को जोड़ना चाहिए इस विधि परक नहीं हो सकता यह भाव है ॥ २३ ॥

परन्तु जो पुरोडाश विशेषरूप से दग्ध काला हो जाय तो

वसुद्दिश्य विदग्धद्रव्यविधिसंभवे अर्थवादत्वकल्पनमन्याय्यमतआह। प्रकरणइति । प्रकरणे दर्शपूर्णमासप्रकरणे संभवन् निविशमानः लब्ध निवेशः सन् अर्थवादरूपेण तस्यापकर्षः प्रकरणवियोगो न कल्पेत । विधिकल्पनापक्षेतु प्रकरणवियोगः प्रसज्येत कुतः हि यतः तंप्रति दर्शपूर्णमासकर्मविशेषं प्रति विध्यानर्थक्यं, यो विदग्धः स नैर्ऋतः इति विधेरसंभवन्निवेशत्वम् । विधिपरत्वमुत्वा प्रकरण संबंध कल्पन पक्षो न संभवति अतो विधिकल्पानर्थक्यं दर्शपूर्णमासे निर्ऋतियागाभावादिति भावः ॥२४

वह निर्ऋति का भाग होता है तै० सं० २।६।३।४ इस वाक्यमें जो निर्ऋतियाग है उसको उद्देश करके विदग्ध द्रव्य का विधान संभव होनेपर अर्थवादकी कल्पना करना योग्य नहीं ऐसी शंकाके होने पर कहते हैं । प्रकरण इत्यादि सूत्र से । प्रकरणे=दर्शपूर्णमास याग के प्रकरण में संभवन्=अर्थवाद रूप से जिसका प्रवेश है उसका अपकर्ष=प्रकरण से वियोग=पृथक् नहीं करना चाहिए । विधि कल्पना पक्ष में तो प्रकरण से वियोग हो जायगा । क्यों हो जायगा इसका उत्तर हि तंप्रति=दर्शपूर्णमास याग विशेष के प्रति विध्यानर्थक्यं "योविदग्धः स नैर्ऋतः" इस विधि का निवेश होना असंभव है । वाक्य को विधायक मानकर प्रकरण के साथ संबन्ध कल्पना पक्ष संभव नहीं इस कारण विधिकल्पनापक्ष अनर्थक है क्योंकि दर्शपूर्णमास में निर्ऋति याग का अभाव है यह भाव है ॥ २४ ॥

विधौ वाक्यभेदः स्यात् ॥ २५ ॥

ननु तस्माद्यविदग्धता श्रपयितव्य तै.सं. २।६।३।४ "अतो यथा विदग्धो न भवेत् तथा पुरोडाशः पक्तव्यः" इति विधिस्तावकं सद् नैर्ऋतं चरुं परिवृक्त्यै गृहे "परिवृक्त्याः गृहे गत्वा नैर्ऋतं चरुं कुर्यात्" इत्यत्र हविषो दाहरूपगुण-विधायकमप्यास्तामत आह । विधाविति । उभयतात्पर्ये वाक्यभेदः वाक्यावृत्तिरूपः स्पष्टः ॥ २५ ॥

हेतुवन्निगदाः । अधि० ३ ।

हेतुर्वा स्यादर्थवत्त्वोपपत्तिभ्याम् ॥ २६ ॥

चातुर्मास्ये श्रुतम् । शूर्पेण जुहोति तेन ह्यन्नं क्रियतइति ।

इसलिए जैसे विदग्ध न हो वैसा पुरोडाश पकाना चाहिए इस विधि का स्तुतिवाद होकर परिवृक्ति के गृह में जाकर निर्ऋति देवता के चरु को करे । इस स्थल में हविः के दाहरूपगुण का विधायक भी हो इस पर कहते हैं । विधाविति । दोनों अर्थों में तात्पर्य होने पर वाक्यावृतिरूप वाक्यभेद स्पष्ट है । परिवृक्ति नाम प्रीति रहित राजा की स्त्री का है ॥ २५ ॥

अब हेतु पद वाले सिद्धार्थ बोधक वाक्य हैं उन्हों की प्रमाणता सिद्धि के लिए तृतीयाधिकरण की रचना करते हैं । शूर्पेण जुहोति तै० ब्रा० १।६।९ "तेनह्यन्नं क्रियते" यह वाक्य

अत्र तेन ह्यन्नमिति वाक्यस्य हेतुविधित्वे स्तावकत्वे वा प्रामाण्यमिति संशये पूर्वपक्षमाह । हेतुरिति । उक्त वाक्यम् हेतुः विधायकम् स्यात् । शूर्पेण होमः कुतः इत्याक्षेपे हि यतः तेनान्नं क्रियते अतः । इत्थं च यद्यदन्नसाधनं तद्धोम-साधनमिति सिद्धम् । तथा च दर्वीस्थाल्यादीनामपि होम-साधनत्व विधायकतया अर्थवत्त्वं फलवत्त्वं शूर्पपदस्यान्नसाधन-मात्रोपलक्षत्वेन उपपत्तिश्चेति ताभ्याम् हेतुभ्यां ॥ २६ ॥

स्तुतिस्तु शब्दपूर्वत्वादचोदना च तस्य ॥ २७ ॥

चातुर्मास्य याग में श्रुत है । इस स्थल में तेनह्यन्नं यह वाक्य हेतु विधि में प्रमाण है अथवा स्तुतिवाद में प्रमाण हैं इस संशय में पूर्वपक्ष को कहते हैं । हेतुरिति० । उक्त वाक्य होम साधनता का हेतु अन्न करणता है इस अर्थ का विधायक है । शूर्प से होम क्यों किया जाता है इस शंका पर कहते हैं । हि=जिस कारण शूर्प से अन्न किया जाताहै इसी कारण शूर्पसे होम किया जाताहै । इत्थंच हेतुवादत्वेच =हेतुवाद के सिद्ध होनेपर जोजो अन्नसाधन है वे ही होम साधन हैं यह व्याप्ति सिद्ध हुई । तथा च=व्याप्ति सिद्धौ च=व्याप्ति के सिद्ध होने पर कर्छी वटलोई आदि को भी होम साधनत्व का विधायक होने से "तेन" इत्यादि वाक्य को अर्थवत्वं=फलवत्वं=प्रयोजनत्व है और शूर्पपद को अन्न के यावत साधनों का बोधक होने से उक्त उपपत्ति युक्ति भी है इसलिए इन हेतुओं से "तेनह्यन्नं क्रियते" यह वाक्य हेतु विधायक है ॥२६

सिद्धान्तमाह । स्तुतिरिति । शूर्पेण जुहोति इति विधिः तेनह्यन्नं क्रियते इति स्तुतिः । शूर्पस्तुतिः न तु हेतुवादः । शब्दपूर्वत्वात् शब्दः शूर्पेणेति करणत्वबोधक तृतीयान्तः पूर्वम् यस्य तेनह्यन्नं मित्यस्य तत्त्वात् तस्य दर्वीपिठरादरचोदना न विधिः । होमस्य साधनाकांक्षायां प्रत्यक्षश्रुतशूर्पेण निराकांक्षत्वात् स्तुतिपरमितिभावः ॥ २७ ॥

अयर्थे स्तुतिरन्यार्थ्येति चेत् ॥ २८ ॥

ननु प्रकृष्टान्नसाधनत्वं यथा स्थाल्यादौ तथा न शूर्पे

सिद्धान्त को कहते हैं । स्तुति इत्यादि ग्रंथ से "शूर्पेण जुहोति" इस वाक्य से शूर्प का विधान है । "तेनह्यन्नं क्रियते" इस वाक्य में स्तुति=शूर्पकी स्तुति=की जाती है, (शब्दपूर्वत्वात्) जिसके पूर्व शूर्पेण यह करणत्व बोधक तृतीयांत शब्द है ऐसा "तेनह्यन्नं" यह वाक्य है इसलिए "तेन" इस सर्व नाम से प्रकृत शूर्प का ही परामर्श हो सकता है अन्य का नहीं इसलिए "तस्य" कछीं बटलोई आदि की (अचोदना) यद्यदन्न करणं तेन तेन होतव्यं । जो जो अन्न के कारण हैं उनसे ही होम करना चाहिए इस विधि का अभाव है । साधनाकांक्षा होने पर प्रत्यक्ष श्रुत शूर्प के द्वारा निवृत्त हो जानेसे यह वाक्य स्तुति परक है, हेतु प्रतिपादक नहीं यह भाव है ॥ २७ ॥

प्रकृष्ट अन्न का साधनत्व जैसे स्थाली आदि में है वैसा शूप म नहीं इसलिए जिसमें जो धर्म नहीं और उस धर्म से

इति अविद्यमानधर्मेण स्तुरिन्याय्यत्याशङ्कते । व्यर्थे इति । व्यर्थे उक्तधर्मशून्ये शेषं स्पष्टम् ॥ २८ ॥

अर्थस्तु विधिशेषत्वाद्यथालोके ॥ २९ ॥

समाधत्ते । अर्थ इति । विधिशेषत्वाद् विधेयशूर्पस्तावकत्वाद् अर्थः सफलः । यथा लोके चैत्रो बलवत्तरः मैत्रादीन्सहतइत्युक्ते मैत्राद्बलवत्त्वेऽपि न सिंहाद्बलवान् तथा शूर्पस्य अन्नं प्रति स्थाल्यपेक्षयाबहिरङ्गत्वेऽपि लाङ्गलाद्यपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वेन साधकत्वमस्तीति भावः ॥ २९ ॥

यदि च हेतुरवतिष्ठेत निर्देशात्सामान्यादिति

उसकी स्तुति अनुचित है ऐसी आशंका करते हैं । व्यर्थे इति । (व्यर्थे) उक्त प्रकृष्ट अन्न साधनत्वरुप धर्म से शून्य शूर्प में । शेष स्पष्ट है ॥ २८ ॥

अब सिद्धान्ती उक्त शंका का समाधान करता है । अर्थ इति । (विशेषत्वाद्) "तेनह्यन्नं" यह शब्द विधेय शूर्प की स्तुति करने वाला होने से (अर्थः) सफल है । जैसे लोक में बलवत्तर चैत्र मैत्रादिओं के उपर क्षमा करता है ऐसा कथन होने पर भी मैत्र से बलवान होने पर भी सिंह से बलवान नहीं पाया जाता वैसा ही शूर्प को अन्न के प्रतिस्थाल्यादि की अपेक्षा बहिरंग होने पर भी लाङ्गलादि की अपेक्षा अंतरंग होने से साधकत्वं है यह भाव है ॥ २९ ॥

चेदव्यवस्था विधीनां स्यात् ॥ ३० ॥

तुष्यतु दुर्जन इति न्यायेन हेतुविधित्वमंगीकृत्यापि न परसमीहितसिद्धिरित्याह । यदि हेतिवति यदि हेतुः हेतुविधिः तदाऽपि निर्देशात् शूर्पस्य निर्देशात् तन्निष्ठमन्नहेतुत्वमेव अवतिष्ठे प्राप्नुयाद् न तु दर्वीपिठरादितम् । पदश्रुत्यपेक्षया प्रत्ययश्रुतेः प्रबलत्वात् । आविशेष श्रुत्या तृतीया श्रवणात् । समाधत्ते । अव्यवस्थेति । विधिना तथा सत्यव्यवस्था स्यात् वस्तुमात्रे किंचिन्निरूपित हेतुतायाः सत्त्वादिति भावः ॥ ३० ॥

अत्र तुष्यतुदुर्जन • इस न्याय से "तेन ह्यन्न क्रियते" यह वाक्य हेतु विधायक ऐसा मानकर भी पूर्वपक्षी के इष्ट की सिद्धि नहीं हो सकती ऐसा कहते हैं । यदि हत्विति । (यदि हेतुः) यदि "तेन" इस वाक्य को हेतुविधायक माना जाय तो भी (निदशात्) "शूर्प का कथन होने से उसमें ही अन्न हेतुता प्राप्त हो सकती है दर्वी पिठरादि में नहीं । "शूर्पेण" इस पद श्रुति की अपेक्षा "इन" प्रत्यय श्रुति प्रबल है अतः अविशेष तृतीया के श्रवण से अन्नकरण सामान्य का ज्ञान होता है यह आशंका करते है (सामान्याव) अविशेष तृतीया विभक्ति का श्रवण होने से समाधान करते है । अव्यवस्थेति । ऐसा होने पर (विधीनां) विधेय और अविधेयों की कोई व्यवस्था नहीं

• पूर्वपक्षी का कथन मानकर दोष देने का नाम तुष्यतुदुर्जन न्याय है ।

मंत्राणामर्थप्रत्यायनार्थत्वम् । अधि० ४ ।

तदर्थशास्त्रात् ॥ ३१ ॥

मंत्रोच्चारणमदृष्टार्थमुत कर्मसमवेतार्थस्मारकतया तदुपयोग इति संशये पूर्वपक्षमाह । तदिति । देवस्यत्वेत्यारभ्यगायत्रेणच्छन्दसाऽऽददे त्रैष्टुभेनाऽऽददे जागतेनत्वा छन्दसाऽऽददे पाङ्क्तेनच्छन्दसाऽऽदद इति मंत्राः सन्ति । तत्र लिंगेनैव आदानसिद्धौ चतुर्भिरभ्रिमादत्तइति आदानार्थकशास्त्रान्तरश्रवणं तथा इमामगृभ्णन् रशनामित्यत्रलिंङ्गेनैव आदानसिद्धौ इमामगृभ्णन्रशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत्तइति श्रवणं व्यर्थं उरु-

---

रहती क्योंकि पदार्थमात्र में किसी निरूपित हेतुता रहती है यह भाव है ॥ ३० ॥

मंत्र अर्थ के बोधक होते हैं । मंत्रों का उच्चारण अदृष्टार्थ है अथवा कर्मसमवेत अर्थ का स्मरण कराने से उसका उपयोग है । इस संशय के होने पर पूर्वपक्ष को कहते हैं । तदिति । "देवस्य त्वा" इससे आरंभ करके "गायत्रेण" इत्यादि मंत्र हैं । तहां लिंग से ही=अर्थ प्रकाशन सामर्थ्य रूप लिंग से ही आदान की सिद्धि हो जाने पर "चतुर्भिरभ्रिमादत्ते" इस आदानार्थक शास्त्रान्तर का श्रवण तथा "इमाम" इस मंत्र में लिंग से ही ग्रहण के सिद्ध होने पर "इमाम" इत्यादि शास्त्र का श्रवण और "उरुप्रथस्व" इसमें लिंग से ही प्रथन के सिद्ध होने पर "उरूप्रथस्व" इत्यादि शास्त्र का श्रवण व्यर्थ हो

प्रथस्वेत्यत्र तदर्थः सः पुरोडाशप्रथमरूपोऽर्थः यादृशिशास्त्रे तादृशशास्त्राद् उरु प्रथस्वेति पुरोडाश प्रथयतीति विधिवाक्यात् तज्ज्ञानसंभवात् । मंत्रा- नर्थक्यमित्यत्र सर्वपञ्चम्यन्तानामन्वयः ॥ ३१ ॥

वाक्यनियमात् ॥ ३२ ॥

हेत्वन्तरमाह । वाक्येति वाक्यस्य वाक्यक्रमस्य नियमात् । अग्निर्मूर्धादिवः ककुदित्यत्र मूर्धादिवः अग्नि ककुदिति व्यत्क्रमपाठेऽपि अर्थप्रतिपत्तिसंभवात् क्रमनियमो व्यर्थः स्यादिति भावः ॥ ३२ ॥

बुद्धशास्त्रात् ॥ ३३ ॥

जायगा (तदर्थः) " सः "पुरोडाश का वृद्धि रूप अर्थ जिस शास्त्र में है उस शास्त्रसे—उरु प्रथस्वेति पुरोडाश प्रथयति—इस विधि वाक्य से प्रथन का ज्ञान संभव होने से मंत्रों को आनर्थक्य है इसमें सब पञ्चम्यन्तों का अन्वय है ॥ ३१ ॥

मंत्र अर्थ रहित होते हैं इसमें और हेतु देते है । वाक्येति । (वाक्यस्य) पदसमूहात्मक मंत्र वाक्य के पदक्रम का नियम रूप लिंग से भी मंत्रों को अर्थबोधकता नहीं । " अग्निर्मूर्धादिवः ककुत " इस मंत्र में मूर्धादिवः अग्नि ककुत इस व्युत्क्रम पाठ में भी अथ प्रतिपत्ति का संभव होने से क्रम का नियम अनर्थक हो जायगा यह भाव है ॥ ३२ ॥

हेत्वन्तरमाह । बुद्धेति । अग्निध्रेण प्रयोगाद् बहिरेव अग्निविहरणादि कर्म मदीयमिति बुद्धे जाते "अग्नीदग्नीन्विहर" तै० सं० ६।३।१।२ श० ब्रा० ४।२।५।११ बर्हिस्तृणीहि श० ब्रा० १।३ ६।७ इति शास्त्रात् पाठात् ज्ञातस्य ज्ञानं निष्प्रयोजनमिति भावः ॥ ३३ ॥

अविद्यमानवचनात् ॥ ३४ ॥

इतोऽपि मंत्रानर्थक्यमाह । अविद्येति । अविद्यमानवस्तुतः वचनात् कथनात् " चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादाः ऋ. सं. ४।५।५८, ४।५८।३ इति प्रतिपादितंवस्तु प्रकृतौ वानास्तीति भावः ॥ ३४ ॥

और हेतु देते हैं । बुद्धेति । प्रयोग से=अनुष्ठान से बाहर ही अग्नि का प्रज्वालनादि कर्म मेरा है ऐसा अग्नीध्र को बुद्ध= ज्ञात होने पर " अग्नीत् ' बर्हि " इत्यादि शास्त्र से=संप्रैष का पाठ=कथन होने से मंत्र अर्थवाले नहीं । ज्ञात का ज्ञान निष्फल होता है यह भाव है ॥ ३३ ॥

आगे कहे जाने वाले हेतु से भी मंत्रों को आनर्थक्य कहते हैं । अविद्येति । अविद्यमान वस्तु का कथन पाये जाने से मंत्रों का कुछ अर्थ नहीं । " चत्वारि " इत्यादि वाक्य से प्रतिपादित चतुः शृंगत्वादि से उपेत वस्तु प्रकृति तथा विकृति में नहीं पाई जाती यह भाव है ॥ ३४ ॥

अचेतनार्थसंबन्धात् ॥ ३५ ॥

शृणोत ग्रावणः स्वधिते नैनं हिंसीरित्यचेतनसंबोधनादपीत्याह। अचेतनेति। अचेतनार्थे स्वधित्यादौ संबोधन विभक्ति प्रयोगात् ॥ ३५ ॥

अर्थविप्रतिषेधात् ॥ ३६ ॥

हेत्वन्तरमाह। अर्थेति। अर्थयोः मंत्रघटकपदार्थयोः विप्रतिषेधात् विरोधात्। "अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्" इत्यत्रादितिः चेतना तस्या अचेतनेन अंतरिक्षादिना सार्क

"शृणोत" तै० सं० १।३।१२ "स्वधिते" ६।३।९। "त्वमुत्तमास्योषधे" ऋ० ८।४।११।२३ इत्यादि वाक्यों में ग्रावणादि जड़ पदार्थों का संबोधन पाये जाने से भी ऐसा कहते हैं। अचेतनेति। अचेतन अर्थ स्वधिते इत्यादि में संबोधन विभक्ति का प्रयोग होने से मंत्र अर्थवाला नहीं ॥ ३५ ॥

अन्य हेतु देते हैं। अर्थेति। (अर्थयोः) मंत्रघटक दोनों पदार्थों का परस्पर (विप्रतिषेधात्) विरोध होने से। अदितिर्द्यौ ऋ० १।६।१६।१० वाज० सं० २५।२३ तै० आ० १।१३ एकोरुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे, असंख्याताः सहस्राणियेरुद्रा अधिभूम्याम्। वाज० सं० १६।५४ तै० सं० ४।५।११ इत्यादि वाक्यों में अदिति चेतन है उसका अचेतन अन्तरिक्षादि के साथ संबंध और एक ही रुद्र है, दूसरा नहीं, ऐसा कथन करके असंख्यात सहस्रों रुद्र पृथिवी में आधिपत्य करते हैं यह

संबंधो विरुध्यतइति भावः ॥ ३६ ॥

स्वाध्यायवदवचनात् ॥ ३७ ॥

यथा स्वाध्यायोऽध्येतव्य इत्यक्षरग्रहणविधि तथा अवचनादर्थस्मरणं मंत्रणकर्त्तव्यमिति विध्यभावात् ॥ ३७ ॥

अविज्ञेयात् ॥ ३८ ॥

अन्यं हेतुमाह । अविज्ञेयादिति । " सृण्येव जर्भरी तुर्फरीत्यादि मंत्राणामविज्ञेयार्थकपदघोटतत्वादिति भावः ॥३८

कथन विरुद्ध होता हैं इसलिए मंत्र उच्चारणार्थ हैं इनका कुछ अर्थ नहीं ॥ ३६ ॥

जैसा कि स्वाध्यायो अध्येतव्यः "श. ब्रा. ११।५।६ नित्य विधि वाक्य से द्विजातियों के अक्षर ग्रहण के लिये विधान है वैसा अर्थ ग्रहण के लिये वचन न होने से मंत्र अनर्थक है=अर्थ स्मरण मंत्र से करना इस विधि का अभाव होने से ॥ ३७ ॥

और हेतु कहते हैं । अविज्ञेयादिति । वेद वाक्यों का अर्थ अविज्ञेय=जानने योग्य न होने से उसका अर्थ नहीं । "सृण्येव" ऋ. ८।३।६।६ इत्यादि मंत्रों को अविज्ञेयार्थक पदसे विशिष्ट होने से मंत्र केवल उच्चारणार्थ हैं यह भाव है ॥ ३८ ॥

अनित्यसंयोगान्मन्त्रानर्थक्यम् ॥ ३९ ॥

अन्यमाह । अनित्येति । "किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु-गाव" इत्यत्र कीकटदेशादिरूपानित्यवस्तुवचनपदघटितत्वात् । अर्थविवक्षायामनित्यत्वं वेदस्य स्यादतोमन्त्रानर्थक्यं दृष्टस्यार्थे स्मरणस्य कारणं न किंतु तदुच्चारणमदृष्टार्थमिति भावः ॥३९

अविशिष्टस्तु वाक्यार्थः ॥ ४० ॥

सिद्धान्तमारभते । अवीति । लोके यानि पादानि ये च तेषामर्थाः तेभ्यः अविशिष्टः अविलक्षणः वेदे पदप्रहितो ऽर्थः

अन्य हेतु को कहते हैं । अनित्येति कीकट देश में गौयें तुम्हारा क्या नष्ट किया है इत्यादि मंत्रों में कीकट देश और नैशाख नगर और उसका प्रमंगद राजादि रूप अनित्य वस्तु का वाचक पद से संपादित होने से यदि प्रमंगद राजा आदि रूप अर्थ बोध कराना मंत्र का उद्देश्य होतो वेद को अनित्यत्व आता है इसलिए मंत्र की अनर्थकता है । मंत्र का उच्चारण दृष्ट अर्थ के स्मरण का कारण नहीं किंतु अदृष्टार्थ है यह भाव है ॥३९॥

पूर्व पक्ष का मत निबद्ध करके अब उस विषय में सिद्धान्त का आरम्भ करते हैं । "अवि इत्यादि सूत्र से । लोक में जो पद हैं और उन्हों के जो अर्थ हैं उन्हों से (अविशिष्टः) अविलक्षण अर्थात् समान ही वेद में भी पद प्रतिपादित अर्थहै । क्रियाकारक

यथा लोके उच्चारितशब्दार्थो विवक्षितः तथा वेदेऽपीति भावः ॥ ४० ॥

गुणार्थेन पुनः श्रुतिः ॥ ४१ ॥

चतुर्भिरभ्रिमादत्त इत्यस्य फलमाह । गुणेति । गुणार्थेन चतुष्ठ्यरूपगुणलाभार्थं पुनः श्रुतिः पुनर्विधानम् । आदाने लिंगेनैकैक मंत्रस्य विकल्पेन प्राप्तौ चतुर्णां समुच्चयार्थं पुनर्विधिरिति भावः ॥ ४१ ॥

संबंध में प्रतीयमान वाक्यार्थ लोक में और वेद में उभयत्र एक रूप है । जैसे लोक में उच्चारित शब्दार्थ विवक्षित है वैसा ही वेद में भी यह भाव है ॥ ४० ॥

खनन का हेतु काष्ठ विशेष का नाम अभ्रि है उसका चार मंत्रों द्वारा ग्रहण करना चाहिए, इस विधि वाक्य के फल को कहते हैं । गुणेति । मंत्र के द्वारा प्रतीत विषय का ही ब्राह्मण वाक्य में जो पुनः श्रवण=पुनः विधान है वह केवल चतुष्ठ्य संख्या रूप गुणविधान के निमित्त ही उपयुक्त हुआ है । अभ्रि के आदानमें लिङ्गसे एक एक मंत्रकी विकल्पसे प्राप्ति होने पर चारों के समुच्चय के लिए पुनः विधान है यह भाव है । अर्थात इस विधि के न होने पर चार मंत्रों में से किसी के द्वारा अभ्रि आदान करना ही विधान होता और जब यह विधि है तब चारों के द्वारा आदान करना होता है ॥ ४१ ॥

परिसंख्या ॥ ४२ ॥

अश्वाभिदानीमादत्तइत्यस्य फलमाह। परीति। परिसंख्याया गर्दभरसनातो निवृत्तिः फलम्। लिङ्गस्योभयसाधारणत्वादिति भावः ॥ ४२ ॥

अर्थवादो वा ४३ ॥

उरु प्रथस्वेति ब्राह्मणवाक्यम् लिंगेन कल्पितविधिशेषोऽर्थवाद इत्याह। अर्थेति। लिंगादेव सिद्धेः उरुप्रथस्वेति पुरोडाशं प्रथयति इति पुनः श्रवणमर्थवाद एव ॥ ४३ ॥

अविरुद्धं परं ॥ ४४ ॥

"अश्वाभि" इस वाक्य का फल कहते हैं। परि इत्यादि सूत्र से "अश्वाभिधानीमादत्त" इत्यस्य परिसंख्याविधिः कर्त्तव्य उक्त वाक्य को परिसंख्या विधि करनी चाहिए। परिसंख्या का फल गर्दभ रसना से मंत्र की निवृत्ति है। लिङ्ग को दोनों में साधारण होने से यह भाव है ॥ ४२ ॥

"उरुप्रथस्वेति" यह ब्राह्मणवाक्य लिंग द्वारा कल्पित विधि का शेष है=अर्थवाद है ऐसा कहते हैं। अर्थेति लिंग से सिद्ध होने पर "उरुपथस्वेति पुरोडाशं प्रथयति" यह पुनः श्रवण अर्थवाद ही है ॥ ४३ ॥

वाक्य नियमादित्यस्योत्तरमाह । अविरुद्धमिति । परं नियतक्रमकं पठनमविरुद्धमर्थस्मरणपक्षेऽप्यविरुद्धं क्रमपाठ-नियमापूर्व कल्पनादिति शेषः ॥ ४४ ॥

संप्रैषे कर्मगर्हाऽनुपलम्भः संस्कारत्वात् ॥ ४५ ॥

बुद्धशास्त्रादित्यस्योत्तरमाह । संप्रैषइति । संप्रैषऽग्नींदग्नींनिति वाक्ये कर्मणि कर्मबोधे गर्हा दूषणं तदनुपालम्भः अदूषणं । संस्कारत्वात् मंत्रेण पुनः स्मरणेन अग्निध्रस्य संस्कारो भवति । व्रीहीणामिव पोक्षणेनेति भावः ॥ ४५ ॥

अभिधानेऽर्थवादः ॥ ४६ ॥

वाक्यनियमात इसका उत्तर कहते हैं । अविरुद्धमिति । (परं) जो नियत क्रमवाला मंत्र पाठ अदृष्टार्थ कहा है वह (अविरुद्धं) अर्थस्मरण पक्ष में भी विरुद्ध नहीं क्योंकि क्रमपाठ का नियम करने से नियमापूर्वक अनुमान होता है यह शेष है ॥ ४४ ॥

"बुद्धशास्त्रात" इसका उत्तर देते हैं । संप्रैषइति । (संप्रैषे) "अग्नीदग्नीन् विहर" तै० सं० ६।३।१।२ इस अनुज्ञावाक्य में (कर्मणि) ज्ञात कर्मके ज्ञानमें जो (गर्हा) दोष दिया गयाथा वह (अनुपालम्भः) दोष नहीं क्योंकि (संस्कारत्वात्) मंत्र द्वारा पुनः स्मरण करने से आग्नीध्र का अदृष्टरूप संस्कार होता है । प्रोक्षण से व्रीहिओं की भांति यह भाव है ॥ ४५ ॥

अविद्यमानवचनादित्यस्योत्तरमाह । अभिधानेति । अभिधाने चत्वारीति मंत्रे चत्वारि शृङ्गा इत्यादीनि पदानि अर्थवादः गौण्या वृत्त्या स्तावकानि । अयमृग्वेदे विषुवसंज्ञक-एकाहे आग्नेय्याहोता शंसतीति विहित आज्यशस्त्रे अग्निस्सूर्या दभिन्न इति स्तुत्यर्थं प्रवृत्तः । अस्य सूर्यस्य चत्वारि शृङ्गा दिवससम्बन्धिनः यामाः त्रयः शीतोष्णवर्षाः पादाः द्वे अयने शीर्षे सप्त अश्वाः हस्तासः त्रिधा त्रिप्रकारेण सवनत्रय-रूपेणबद्धः वृष्टिहेतुत्वाद्वृषभः महोदेवः मर्त्यानुत्साहयन् आवि-वेशेति सूर्याभिन्नोऽग्निरित्यर्थः एतेनाचेतने स्वधित्यादौ

"अविद्यमानवचनात्" इसके उत्तर को कहते हैं । अभिधान इति । अभीयते अनेन इस व्युत्पत्ति से अभिधान नाम मंत्र का है (अभिधाने) "चत्वारि" इस मंत्र में चत्वारि शृंगा इत्यादि पद (अर्थवाद) गौणीवृत्तिं से स्तुतिवाद हैं यह ऋग्वेद में विषुवनामक एकाहयाग है उसमें "आग्नेय्याहोता शंसति" इस वाक्य से विहित आज्य शस्त्र है उस स्थल में अग्नि सूर्य से अभिन्न है । इस स्तुति के लिए प्रवृत्त है । इस सूर्य के दिन-संबंधी चार याम हैं वे विषाण हैं. तीन शीतोष्ण और वर्षा ये पाद हैं, दो अयन-उत्तरायण तथा दक्षिणायण ये सिरहैं, सात घोड़े हाथ हैं, तीन प्रकार से=सवनत्रय रूप से बद्ध हैं । वृष्टि की कारणता होने से वृषभ है महोदेव मनुष्यों को उत्साह करता हुआ प्रवेश किया इस प्रकार सूर्य से अभिन्न अग्नि है यह अर्थ है । इससे अचेतन "स्वधिति"

चैतन्यारोपेण तत्स्तुतिरिति अचेतनेति सूत्रमपि प्रत्युक्तम् ॥४६

गुणादविप्रतिषेधः स्यात् ॥ ४७ ॥

अर्थविप्रतिषेधादित्यस्योत्तरमाह । गुणादिति । गुणात् गुणकथनात् अविप्रतिषेधः अविरोधः । अदितिद्यौरित्यत्र त्वं माता त्वं पितेतिवदविद्यमानगुणैरेव स्तुतिरिति भावः ॥४७

विद्यावचनमसंयोगात् ॥ ४८ ॥

इत्यादियों में चैतन्य के आरोपण से उसकी स्तुति है इस प्रकार "अचेतन" यह सूत्र भी प्रत्युक्त हो गया ॥ ४६ ॥

अब "अर्थविप्रतिषेधात्" इस सूत्र में किये गये पूर्वपक्ष का समाधान करते हैं । गुणादिति । (गुणात्) "अदितिर्द्यौ" इस मंत्र में गुणवृत्ति से अदिति को द्यू और अंतरिक्ष आदि प्रतिपादन किया है इसलिए (अविप्रतिषेधः स्यात्) अर्थों का परस्पर कोई विरोध नहीं । एक ही शब्द गुणवृत्ति से नाना अर्थों का कथन कर सकता है जैसा कि लोक में सिंह शब्द मुख्यवृत्ति से सिंह को गुणवृत्ति से माणवक को कहता है और उन अर्थों का परस्पर कोई विरोध नहीं वैसे ही वेद में भी जानना चाहिये यह तात्पर्य है । अदितिर्द्यौ ऋ० १.६।१७।१० इस वाक्य में तुम्हीं माता तुम्हीं पिता इस वाक्य के समान अविद्यमान गुणों द्वारा स्तुति की गई है यह भाव है ॥ ४७ ॥

स्वाध्यायेति हेतुं निवारयति । विद्येति । विद्याया अर्थज्ञानस्यावचनमविधानम् । असंयोगादर्थसिद्धत्वात् स्वाध्यायविधिभाव्यमर्थज्ञानमिति सिद्धत्वादिति भावः ॥ ४८ ॥

सतः परमविज्ञानम् ॥ ४९ ॥

सृण्येव जर्भरीत्यादिमंत्रे (सतः) अर्थस्य सतः अविज्ञानं ज्ञानाभावः परमालस्यादिति पूरणीयम् । तस्या ऋचोऽर्थः कौस्तुभेस्पष्टः ॥ ४९ ॥

उक्तश्चानित्यसंयोगः ॥ ५० ॥

अनित्यसंयोगपरिहारस्तूक्तः प्रथमपादे "परं तु श्रुतिसामान्य

स्वाध्याय इस हेतु का निवारण करते हैं । विद्येति । (विद्याया) अर्थज्ञान का (अवचनं) विधान नहीं (असंयोगात्) " अर्थस्मरणं मंत्रेण कर्त्तव्यं " इस वचन के बिना ही अर्थ सिद्ध होनेसे " स्वाध्याय विधि का भाव्य=साध्य अर्थज्ञान है इसलिए "स्वाध्यायः" इस विधिसे ही अर्थज्ञान सिद्धहै यह भावहै ॥४८॥

" सृण्येव " इत्यादि मंत्र में (सतः) विद्यमान अर्थ का (अविज्ञानं) ज्ञान न होना (परं) युक्त है । " आलस्य से " इस पद का सूत्र में पूर्ण करना चाहिए । इस ऋचा का अर्थ कौस्तुभ में स्पष्ट है ॥ ४९ ॥

मात्रम् ॥ इत्यात्रेत्याह । उक्त इति । अनित्यसंयोगः तद्वारणोपायः ॥ ५० ॥

लिङ्गोपदेशश्च तदर्थत्वात् ॥ ५१ ॥

एवं परोक्तदोषानुद्धृत्यार्थविवक्षायां साधकमाह । लिङ्गेति "आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते" इत्यत्र विधौ आग्नेय्येति मंत्रेऽग्निलिंगोपदेशः अर्थज्ञानमन्तरा न संभवति । तदर्थत्वाद् अग्निर्देवता प्रतिपाद्या अस्यामृचीत्याग्नेयीति तद्धितार्थत्वात् ।

जन्म-मरण वाले अर्थ के निरूपण का समाधान तो प्रथम पाद के "परंतु" इत्यादि सूत्र में किया गया है इसी बात को कहते हैं । उक्त इति । अनित्य अर्थों का प्रतिपादन और उसके समाधानका उपाय कहा गयाहै । वेद मंत्रोंमें जो मनुष्य वा ग्रामों के नाम आते हैं वे सामान्य नाम हैं किसी व्यक्ति विशेष वा ग्राम विशेष के नहीं । यही सर्वत्र जानना चाहिए ॥ ५० ॥

इस प्रकार पूर्वपक्षी द्वारा कथन किये गए सब पूर्वपक्षों का समाधान करके अब मंत्रोंका अर्थ होता है । इस पक्षकी दृढ़ता के लिए युक्ति कहते हैं । "लिंगेति" आग्नेय्या अग्नि प्रकाशिकया ऋचा अग्नीध्रंतन्नामकं मंडप विशेषं महावेदेरुत्तरभागेस्थितं, उपतिष्ठते अभिदध्यादित्यर्थः । अग्नि बोधक ऋचा द्वारा महावेदि के उत्तर भाग में स्थित आग्नीध्र नामक मंडप विशेष की स्तुति करे यह अर्थ है । "आग्नेया" इस मंत्र में अग्निरूपार्थ का बोधन

अस्यामृच्यग्निर्देवता प्रतिपाद्येत्यर्थज्ञानमन्तराऽसंभवादिति भावः ॥ ५१ ॥

ऊह ॥ ५२ ॥

मंत्राणाम् विवक्षितार्थकत्वे साधकान्तरमाह । ऊह इति। ऊहः ऊहनिषेधश्च मंत्राणाम् विवक्षितार्थत्व उपपन्न इति शेषः। अयं भावः । बहु पशुक यागे अर्थबाधेन एनमित्यत्र एनानिति बहुवचनोहवन् "माता मन्यन्तामनुपिता" यजुर्वेद ४।२०ः तै० सं० १।२।४ इत्यत्र मातरोमन्यतामनुपितर इत्यूहप्राप्तौ

सामर्थ्यरूपलिंग का उपदेश इस विधिवाक्य मे है. वह र्थज्ञान के बिना नहीं हो सकता । (तदर्थत्वात्) अग्निदेवता प्रतिपाद्य इस ऋचा में ऐसा आग्नेयी इस तद्धितान्त का अर्थ होने से । इस ऋचा में अग्निदेवता प्रतिपाद्य है यह अर्थ अर्थज्ञान के बिना अयुक्त होने से मंत्र वाक्य का अर्थ है यह भाव है ॥ ५१ ॥

मंत्रों की अर्थविपक्षा है इस विषय में सूत्र में अन्य एक हेतु दिखाते हैं । ऊह इस सूत्रसे । ऊह तथा ऊहका निषेध मंत्रों के अर्थ विवक्षा होने पर युक्त हो सकता है अन्यथा नहीं यह शेष है । भाव यह है कि बहुपशुक यागमें एकत्व रूप अर्थका बाध होने से 'एनम्' इसके स्थान में 'एनान्' इस बहुवचन के प्रक्षेपरूप ऊह की भांति "मातामन्यताम्" इस वाक्य में मातरः पितरः इस बहुवचनान्त ऊह की प्राप्ति होने पर 'माता

न माता वर्धते नो पितेति माता बहुवचनाद्यूहेन न वर्धयितव्य इति निषेधः अर्थज्ञानार्थत्व उपपद्यते । केवलमदृष्टार्थत्व ऊहस्या ऽप्रसक्त्या निषेधो विरुध्यतइति । प्रकृतावाम्नात मंत्रगत पदस्य विकृतावर्थान्तराभिधानाय तदुचितपदान्तरप्रक्षेप ऊहः ॥५२॥

विधिशब्दाश्च ॥ ५३ ॥

अस्मिन्विषये साधकान्तरमाह । विधीति । विधिश्च क्वचिदर्थवादश्च मंत्रस्यार्थवत्त्वसाधकः यथाऽग्निहोत्रप्रकरणे महोपस्थाने अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहम् त्त्वयेति मंत्रेशतँ हिमा इत्यस्ति । तत्र हिमा इत्यस्य व्याख्यानं शतँ हिमाः इत्याह

वृद्धि नहीं पाती, पिता वृद्धि नहीं पाता ' इस वाक्य से मातृ तथा पितृ शब्द की बहुवचनादि का ऊह करके वृद्धि नहीं करनी चाहिये यह निषेध किया गया है वह मंत्रों को अर्थ ज्ञानार्थत्व होने पर संगत होता है । केवल अदृष्टार्थत्व होने पर ऊहकी प्राप्ति न होनेसे निषेध विरुद्ध हो जायगा । प्रकृतियाग में पठित मंत्र गत पद के स्थान में विकृतियाग में अर्थान्तर कथन के लिए उसका उपयोगीपदान्तर का प्रक्षेप=सन्निविष्ट करके पाठ करने का नाम ऊह है ॥ ९२ ॥

इस विषय में अन्य हेतु को कहते हैं । विधि इत्यादि सूत्र से । (विधिश्च) कहीं अर्थवाद वाक्य भी मंत्र के अर्थ का साधक होता है । जैसे अग्नि होत्र प्रकरण में महोपस्थान में—

शतँ त्वा हेमन्तानिन्धिषीयेति वा वैतदाहेति । शतँ हिमाः शतँ हेमन्तानिति एतद्यजुराहेति व्याख्यानवाक्यार्थः यदि यजुषोऽर्थज्ञानपर्यन्तं तात्पर्यं न स्यात् तर्हि एतद्यजुरिममर्थमाहेति यजुरर्थप्रकाशनं व्यर्थमिति भावः ॥ ५३ ॥

इति जैमिनिसूत्रवृत्त्यां प्रथमाध्यायस्य द्वितीय पादः ।

स्तुति में विनियुक्त 'अग्नेगृहपते' ते० मं० १।५।६।४ यह मंत्र है उसमें 'शतँ हिमा' यह शब्द है तहां 'हिमा' इसका व्याख्यान करने वाला "शतंहिमा इत्याह शतँत्वा हेमन्तानिन्धिषीयेति वा वैतदाह" तै० मं० १।५।८।५ यह वाक्य है। यह मंत्र शतँहिमा। इन शब्दों से शतसंवत्सर पर्यन्त तेरा सेवा करूं ऐसा कहता है। शतं हेमन्तान् ऐसा शतँहिमाः यह यजु कहता है। यह व्याख्यान वाक्य का अर्थ है। यदि यजु का अर्थज्ञान पर्यन्त तात्पर्य न हो तो यह यजु इस अर्थ को कहता है यह यजु के अर्थ का प्रकाशन है वह व्यर्थ हो जायगा यह भाव है ॥५३

प्रथम अध्याय का द्वितीय पाद समाप्त हुआ ।



स्मृतिप्रामाण्यम् । अधि० १ ।

धर्मस्य शब्दमूलत्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात् ॥ १ ॥

उक्तदिशा विध्यर्थवादमंत्राणाम् धर्मे प्रामाण्यम् व्यवस्थाप्येदानीम् स्मृतिशिष्टाचाराणाम् धर्मे प्रामाण्यम् व्यवस्थापयन् पूर्वपक्षमाह । धर्मस्येति । धर्मस्य उक्त लक्षण लक्षितस्य शब्दः वेदः मूलम् यस्यतत्त्वात् । अष्टकाः कर्तव्या इति केवलपौरुषवाक्यप्रतिपाद्यमशब्दमवेदमूलमनपेक्ष्यमनादरणीयं स्यात् ॥१॥

अपि वा कर्तृसामान्यात्प्रमाणमनुमानं स्यात् ॥२॥

सिद्धान्तमाह । अपि वेति । दृढवैदिकप्रणयनान्यथानुपपत्तिरूपमनुमानं स्मृतिमूलभूतश्रुतिसत्वे स्यात् । तदित्थं स्मृतिः

अब स्मृति को प्रामाण्य है इसकी सिद्धि के लिए अधिकरण रचना करते हैं । पूर्वोक्त प्रकार से विधि अर्थवाद तथा मंत्रों का धर्म में प्रामाण्य की व्यवस्था करके अब स्मृति तथा शिष्ट पुरुषों के आचारों को धर्ममें वेदानुकूल होने से प्रामाण्य और प्रतिकूल होने से अप्रामाण्य एतादृश व्यवस्था करने के लिए पूर्वपक्ष करते हैं । धर्मस्येत्यादि सूत्र से । पूर्वोक्त लक्षण से लक्षित धर्म में शब्द वेदमूल=प्रमाण होने से । " अष्टकाकर्त्तव्या " इत्यादि केवल पौरुषेय वाक्य से प्रतिपाद्य अष्टकादि कर्म " अशब्दं " वेद मूलक नहीं इस लिए ' अनपेक्ष्यं ' आदर करने योग्य नहीं ॥ १ ॥ सिद्धान्त को कहते हैं । अपिवेति । मन्वादि दृढ वैदिकों ने जो स्मृतियों की रचना की है

स्वमूलभूतवेददर्शनवत्प्रणीता वेदातिरिक्तगम्यो धर्मो न भवतीति निश्चयवता परेषां धर्मज्ञानार्थं प्रणीतत्वात् कल्पसूत्रादिवत्। नन्विदं प्रतारकवाक्यमित्येव किं नोच्यत इत्यत आह। कर्तृसामान्याद् वैदिकानुष्ठानस्मृत्योरेककर्तृकत्वात् न हि वैदिकं कर्म धर्मबुद्ध्या अनुतिष्ठन् प्रतारको भवेदिति भावः ॥२॥

श्रुतिप्राबल्यम् । अधि० २ ।

विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम् ॥३॥

"औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायेदिति श्रुतिविरुध्दा औदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्येति स्मृतिः श्रुतिबाधिका पक्षे संकोचिका वा

उसका अन्यथानुपपत्ति रूप अनुमान प्रमाण स्मृति की मूलभूत श्रुति के अस्तित्व में है वह अनुमान इस प्रकार है कि स्मृति अपने मूलभूत वेद के दर्शनवान् पुरुष से रची गई है। क्योंकि वेद भिन्न प्रमाण द्वारा धर्म नहीं जाना जाता इस निश्चय वाले पुरुष ने अन्य पुरुषों को धर्मज्ञान के लिए कल्पसूत्र के समान प्रणयन किया है। ननु, यह प्रतारक-वञ्चक वाक्य है ऐसा ही क्यों न कहा जाय इस पर कहते हैं। (कर्तृसामान्यात्) वैदिक कर्मानुष्ठान और स्मृति इन दोनों का एक कर्ता होने से। वैदिक कर्म को धर्मबुद्धि से अनुष्ठान करने वाला वञ्चक हो यह संभव नहीं यह भाव है ॥ २ ॥ स्मृति से श्रुति की प्रबलता है इसका अधि० २ है। औदुंबरी

सती धर्मे प्रमाणम् स्मृतित्वादिति बहिः पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह विरोध इति । विरोधे उपलभ्यमान श्रुतिविरोधे अनपेक्ष्यं-स्मृतिप्रामाण्यमनादरणीयं कल्प्यश्रुत्यपेक्षया प्रत्यक्षश्रुतेः प्रबल-त्वेन बाधाद्यसंभवादिति भावः । विरोधेऽसति श्रुति कल्पक-मनुमानं प्रवर्त्तते ॥३॥

इष्टमूलकस्मृत्यप्रामाण्यम् । अधि० ३ ।

हेतुदर्शनाच्च ॥ ४ ॥

ननु सर्वावेष्टयितव्येतिस्मृतिप्रणयने किं कारणमत्राह । हेत्विति । प्रणयने विस्तीर्णवस्त्रलाभो भवतीति लोभस्य स्मृति-प्रणयने कारणत्व दर्शनात् । एतेन वैसर्जनीयं वासोऽध्वर्यु-

---

'स्पृष्ट्वोद्गायेत्' इस श्रुति से विरुद्ध 'औदुम्बरी सर्वा-वेष्टयितव्या' यह स्मृति श्रुति की बाधिका अथवा पक्ष में संकोचिका होकर धर्म में प्रमाण है स्मृतित्व होने से। ऐसा सूत्र से बाहर पूर्वपक्ष होने पर सिद्धान्त को कहते हैं। विरोध इत्यादि से। (विरोधे) प्रत्यक्ष श्रुति के साथ विरोध प्राप्त होने पर (अनपेक्ष्यं) स्मृतिनिष्ठ प्रमाणता का आदर नहीं किया जा सकता कल्प्य श्रुति की अपेक्षा से प्रत्यक्ष श्रुति को प्रबल होने से बाधादि होना असंभव है यह भाव है। प्रत्यक्ष विरोध न होने पर श्रुति का कल्पक अनुमान प्रवर्त्त होता है ॥ ३ ॥ ननु, सर्वा वेष्टयितव्या" इस स्मृति प्रणयन में कारण क्या है इस जिज्ञासा के होने पर कहते हैं। हेतु

गृह्णातीतिश्रुत्यविरुद्ध स्मृतेरपि मूलं लोभ एवेति सूचितम् ॥४॥

पदार्थप्राबल्यम् । अधि० ४ ।

शिष्टाकोपेऽविरुद्धमिति चेत् ॥५॥

वेदं कृत्वा वेदिं करोतीति श्रुत्या वेदवेद्योः पूर्वापरभावः प्रतिपाद्यते । तयोर्मध्ये क्षुत आचामेदिति क्षुन्निमित्तमाचमनं स्मृत्या प्राप्तम् एवं श्रौतक्रमणेप्राप्ते स्मार्त्ताचमनस्य विरोधे आचमनं बाध्यते न वेति संशये सिद्धान्तेनोपक्रमते । शिष्टेति । शिष्टानां वैदिकानां पदार्थानामकोपे अविरोधे आचमनमविरुद्धमनुष्ठेयम् । क्रमस्य पदार्थधर्मत्वेन आचमनेन प्रबलेन पदार्थेन बाधे बाधका भाव इति भावः ॥५॥

इत्यादि से । स्मृति के प्रणयन होने पर विस्तीर्ण वस्त्र का लाभ होता है । इस लोभ को स्मृति प्रणयन में कारणता देखने में आती है इससे 'वैनजंनायं वास्तेऽध्वर्युर्गृह्णाति' यह स्मृति श्रुति से विरुद्ध नहीं तो भी इसका कारण लोभ ही है यह सूचित किया गया ॥४॥ पदार्थ धर्म से पदार्थ प्रबल होता है इसका अधिकरण ४ है । 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति' इस श्रुति वाक्य से वेद तथा वेदि का पूर्वापर भाव का प्रतिपादन किया गया है । उन दोनों के मध्य में क्षुत 'आचामेत्' इस स्मृति से क्षुत् निमित्तक आचमन प्राप्त होता है । एवं श्रौतक्रम के साथ स्मार्त्त आचमन के विरोध की प्राप्ति होने पर आचमन का बाध होगा किंवा नहीं । इस संशय के होने

न शास्त्रपरिमाणत्वात् ॥६॥

पूर्वपक्षमाह । नेति । शास्त्रावगतं प्रयोगविध्यवगतं परिमाणं संख्याविशेषो यत्र तत्त्वात्पूर्वोक्तं न । प्रयोग विधिना अस्मिन् कर्मणि इयन्तः पदार्था इति संख्याविशेषोग्राहितः तद्विरोधादाचमनस्मृतिबाध इति भावः ॥६॥

अपि वा कारणाग्रहणे प्रयुक्तानि प्रतीयेरन् ॥७॥

सिद्धान्तं दृढयति । अपिवेति । कारणानाम् स्मृतिप्रणयन कारणानां लोभादीनामग्रहणे अदर्शनेसति प्रयुक्तानि अनुष्ठिता-

---

पर सिद्धान्त से प्रारम्भ करते हैं । सिष्टेति । (शिष्टानां) वैदिक पदार्थों का (अकोपे) विरोध न होने से विरोध रहित आचमन का अनुष्ठान करना चाहिए । पदार्थ का धर्म होने से क्रम दुर्बल है और पदार्थ होने से आचमन को प्रबलत्व है इसलिए आचमन से क्रम के बाध में बाधक का अभाव है यह भाव है ॥ ५ ॥ अब पूर्वपक्ष को कहते हैं । न इत्यादि से । श्रुति से अवगत=प्रयोग विधि से ज्ञात है (परिमाण) संख्या विशेष है जिसमें उसका नाम शास्त्र प्रमाणक है तत्व होने से=यह याग इतनी संख्या वाला है ऐसा श्रुति से ज्ञात होने से पूर्वमें जो कथन किया गया वह ठीक नहीं । प्रयोग विधि से इस कर्म में इतने पदार्थ हैं ऐसा संख्या विशेष बोधित हुए हैं । उस संख्या विशेष के साथ विरोध होने से आचमन स्मृति का बाध होगा यह भाव है । वेदोनामदर्शपूर्णमासादिकर्मषु पुरोडाशालम्भस्मापोहनादिकार्यर्थं पंचाशत्कुशपरिमितोवत्सजान्वा-

न्याचमनादीनि अविरुद्धानि प्रतीयेरन् । न हि स्वगुणरूप-संख्यानुसारेण प्रधानपदार्थबाधोयुक्त इति भावः ॥७॥

शास्त्रप्रसिद्धपदार्थप्रामाण्यम् । अधि० । ५ ।

तेष्वदर्शनाद्विरोधस्य समा विप्रतिपत्तिः स्यात् ॥ ८ ॥

यवमयश्चरुर्भवतीत्यत्र आर्ययवनव्यवहारद्वैविध्येन यव-पदार्थसंशये पूर्वपक्षमाह । तेष्विति । तेषु व्यवहारेषु विरोधस्य प्रबलदुर्बल भावस्यादर्शनाद् विप्रतिपत्तिः शक्तिग्रहः समा तुल्यः स्यात् । तत्रोभयथापदार्थावगमाद्विकल्पः ॥ ८ ॥

कृति विशिष्टोदर्भ मुष्टिविशेषः । दर्शपूर्णमास यागों में पुरो-डास में लगे हुए भस्म को दूर करने के लिए पचास कुशों से परिमित हो वत्स के जानु के आकार से विशिष्ट दर्भमुष्टि विशेष का नाम वेद है ॥ ६ ॥ सिद्धान्त को दृढ करते हैं अविरोधेति । (कारणानां) स्मृति के प्रणयन में लोभादि कारणों का (अग्रहणे) दर्शन न पाये जाने से (प्रयुक्तानि) शिष्ट पुरुषों से अनुष्ठित जो आचमनादि हैं वे अविरुद्ध प्रतीत होते हैं अर्थात् प्रमाण मानना चाहिए । पदार्थ का गुणरूप संख्या के अनुरोध से प्रधान आचमन पदार्थ का बाध करना योग्य नहीं यह भाव है ॥ ७ ॥ शास्त्र प्रसिद्ध पदार्थ के प्रामाण्य का निरूपण करने के लिए अधिकरण ५ करते हैं । ' यवमयश्च-रुर्भवति ' इत्यादि स्थलों में आर्यों का दीर्घ शूक तथा यवनों का प्रियंगु में यव शब्द का व्यवहार होता है । उस व्यवहार को द्विविध होने के कारण यव पदार्थ में संशय होने पर पू

शास्त्रस्था वा तन्निमित्तत्वात् ॥ ९ ॥

सिद्धान्तमाह । शास्त्रस्थेति । शास्त्र प्रतिपाद्या प्रतिपत्तिः यवशब्दस्य " वसन्ते सर्वसस्यानां जायते पत्रशातनम् । मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिन " इति शास्त्रप्रतिपत्तिर्बलीयसी । कुतः तन्निमित्तत्वात् । तस्य धर्मज्ञानस्य निमित्तं-शास्त्रं तत्वात् । यवमयश्चरुर्भवतीति धर्मसाधन यवशक्तिज्ञानं शास्त्रजमेव धर्मउपयुज्यते । यवनानां व्यवहारस्य शक्तिभ्रमेणापि संभवादिति भावः ॥ ९ ॥

पक्ष को कहते हैं । तेषु इत्यादि सूत्र से । (तेषु) व्यवहारों में (विरोधस्य) प्रबलदुर्बल भाव का दोनों में न पाये जाने से (विप्रतिपत्तिः) शक्ति ग्रह समान-तुल्य है । उन दोनों में पदार्थ ज्ञान होने से विकल्प होगा ॥ ८ ॥ सिद्धान्त को कहते हैं । शास्त्रस्थेति । शास्त्र से यव शब्द की शक्ति का ग्रह प्रतिपादन किया गया है और ' वसन्ते० ' इत्यादि शास्त्रजन्य प्रतिपत्ति बलवती है समान नहीं, क्योंकि (तन्निमित्तत्वात्) धर्मज्ञान में निमित्त शास्त्र है । ' यवमयश्चरुर्भवति ' इत्यादि वाक्य में धर्म का साधन यव पदार्थ में शक्तिज्ञान जो शास्त्र जन्य है उसी का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि वही धर्म में उपयोगी हो सकता है । यवनों का व्यवहार शक्ति के भ्रम से भी होना सम्भव है यह भाव है ॥ ९ ॥ म्लेच्छ प्रसिद्ध पदार्थों में प्रामाण्य हैं इसकी सिद्धि के लिए छठा अधिकरण है । ' पिकमालभेत ' इत्यादि वाक्य विहित पिक तथा तामरसादि शब्दों का प्रयोग

म्लेच्छप्रसिद्धपदार्थप्रामाण्यम् । अधि० ६ ।

चोदितं तु प्रतीयेताविरोधात्प्रमाणेन ॥ १० ॥

पिकतामरसादिशब्दप्रयोगः आर्याणां न कुत्रापि म्लेच्छास्त्वर्थविशेषे व्यवहरन्ति । तत्र म्लेच्छव्यवहारं परित्यज्य व्याकरणेन प्रकृतिप्रत्ययौ परिशोध्यार्थ कल्पनमुचितं म्लेच्छव्यवहारक्लृप्त एवेति संशये म्लेच्छव्यवहारस्य धर्मसाधनत्वाभावाद् व्याकरणादिना कल्प्योऽर्थ इति बहिः पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह । चोदितामिति । चोदितं यवनैर्व्यवहृतं प्रतीयेत तत्प-

---

आर्य कहीं पर भी नहीं करते और म्लेच्छ तो अर्थ विशेष में व्यवहार करते हैं। ऐसी परिस्थिति होने पर म्लेच्छ व्यवहार को परित्याग करके व्याकरणादि से प्रकृति प्रत्यय का प्रतिशोधन करके अर्थ की कल्पना करना उचित है अथवा म्लेच्छ व्यवहार से सिद्ध अर्थ ही उचित है इस संशय के होने पर म्लेच्छ व्यवहार सिद्ध अर्थ में धर्म साधनता का अभाव होने से व्याकरणादि से कल्प्य अर्थ ग्रहण करना योग्य है ऐसा बाहर से पूर्वपक्ष होने पर सिद्धान्त को कहते हैं। चोदितम् इत्यादि सूत्र से। (चोदितं) यवनोंसे व्यवहृत=अवगत कोकिलादिक हैं (प्रतीयेत) आर्य भी उनको पदार्थत्वरूप से जानना चाहिये, बलवान वेदरूप प्रमाण के साथ विरोध न होने से; जैसे वसन्ते इत्यादि अर्थवाद से विरुद्ध यव व्यवहार है वैसा यहां नहीं है यह भाव है ॥ १० ॥ कल्पसूत्रों को स्वतः प्रामाण्य का अभावासिद्ध करने के लिए सप्तम अधिकरण कहते

दार्थत्वेन ज्ञातव्यं । बलवता प्रमाणेन अविरोधात् यथाऽर्थवाद विरुद्धो यवव्यवहारः तथाऽत्राभावादिति भावः ॥ १० ॥

कल्पसूत्राणां स्वतः प्रामाण्याऽभावः । अधि० ७ ।

प्रयोगशास्त्रमितिचेत् ॥ ११ ॥

बौधायनापस्तम्बादिसूत्राणि पौरुषेयाणि न वेति संशये पूर्वपक्षमाह । प्रेति । प्रयोगस्य क्रत्वनुष्ठानस्य बोधकम् शास्त्रम् प्रयोग शास्त्रम् कल्पसूत्रमपौरुषेयमनादीति चेत् ॥ ११ ॥

नासन्नियमात् ॥ १२ ॥

है । बौधायन तथा आपस्तम्ब आदि सूत्र पौरुषेय हैं किंवा नहीं इस संशय के होने पर पूर्वपक्ष को कहते हैं । प्रइत्यादि सूत्र से । (प्रयोगस्य) वेदोक्त क्रतु = यागोंका अनुष्ठान यथाविधि बोधन कराने वाला शास्त्र प्रयोग शास्त्र कल्पसूत्र है वह वेद के समान अपौरुषेय अर्थात् अनादि है (चेत्) यदि (इति) ऐसा कहा जाय तो ठीक नहीं इसका अगले सूत्र से संबंध है ॥११॥ अब सिद्धान्त को कहते हैं । न इत्यादि सूत्र से । कल्पसूत्र अपौरुषेय नहीं हो सकते क्योंकि (असतः) पूर्व नहीं थे उन को बौधायनाचार्य आदिओं ने निर्माण किये हैं । तहां कर्ता की स्पष्ट उपलब्धि होने से, यह भाव है ॥ १२ ॥ कल्पसूत्रों के परतः प्रामाण्य में युक्त्यंतर को कहते हैं । अवाक्यशेषात् । प्रयोग विधि के संन्निधि में उसका शेष अर्थवाद के पाठ का अभाव होने से वेद के समान नहीं ॥ १३ ॥ (सर्वत्र) सब कल्पसूत्रों में (संन्निधान शास्त्रात्) याग विधि के सन्नि·

सिद्धान्तमाह । नेति । नाऽपौरुषेयाः असतः पूर्वमसतः बौधायनाचार्यादिभिः नियमात् निर्माणात् । तत्र कर्तुः स्पष्टमुपलभ्यमानत्वादिति भावः ॥ १२ ॥

अवाक्यशेषाच्च ॥ १३ ॥

अवाक्यशेषात् । प्रयोगविधि सन्निधौ तच्छेषार्थवादपाटाभावाच्च न वेद तुल्यः ॥ १३ ॥

सर्वत्र प्रयोगात्सन्निधानशास्त्राच्च ॥ १४ ॥

सर्वत्र सर्वकल्पसूत्रेषु सन्निधानशास्त्रत् सन्निधिपठितशास्त्रार्थात् विरुद्धस्येति शेषः । विरुद्धार्थकस्य प्रयोगात् ।

धि में विद्यमान प्रत्यक्ष श्रुति वाक्य का नाम सन्निधानशास्त्र है सन्निधि पठित शास्त्रार्थ से । 'विरुद्धस्य' इस पद का शेष करना चाहिये । विरुद्धार्थक का प्रयोग होने से वह वेद के समान प्रमाण नहीं; जैसे आपस्तम्ब सूत्र में, 'सर्वाणि हवींषि पर्यग्नि करोति' यह कल्पसूत्र 'पुरोडाशं पर्यग्नि करोति' इस प्रत्यक्ष श्रुति से विरुद्ध है इसी प्रकार अन्य सूत्रों में भी जानना चाहिये । भाव यह है कि कल्पसूत्रों को वेदमूलकत्व दोनों वादिओं को सम्मत है, उसको नित्य होने पर श्रुति के अर्थ का अनुवादक होने से प्रत्यक्ष श्रुति से विरुद्ध वाक्य नहीं हो सकता और अनित्य होने पर न्यायाभास के ज्ञान से वाक्य की रचना होना संभव है ॥ १४ ॥ सामान्य श्रुति की कल्पना करने के लिए आठवां अधिकरण कहते हैं । पूर्व देश

यथाऽऽपस्तम्बसूत्रे सर्वाणि हवींषि पर्यग्नि करोतीति पुरोडाशं पर्यग्नि करोतीति प्रत्यक्ष श्रुति विरुद्धम् सर्वोऽपरपक्षः पूर्णमासस्य कालः "सर्वः पूर्वपक्षोदर्शस्य" इति "पौर्णमास्यां पौर्णमास्या यजेत" "अमावास्यायाममावास्यया यजेत" इति प्रत्यक्ष श्रुति विरुद्धम्। एवमन्यसूत्रेष्वपि द्रष्टव्यानि। अयं भावः। कल्पसूत्राणाम् वेदमूलत्वमुभयवादि सिद्धम् तस्य नित्यत्वे श्रुत्यर्थानुवादकत्वात्प्रत्यक्ष श्रुतिविरुध्दं वाक्यं न स्यात्। अनित्यत्वे न्यायाभासज्ञानेन वाक्य रचना संभवतीति ॥ १४ ॥

निवासी ही होलाका आदि आचार को करते हैं। अतः उसका मूलभूत कल्प्यमान जो श्रुति है वह "होलाकाद्याचारः प्राच्यैः" इस आकार की अनुमित होगी किंवा प्राच्या आदि से असंपादित होगी इस संशय के होने पर पूर्वपक्ष को कहते हैं। अनुमानेति। (अनुमानस्य) अनुमिति का कारणस्वरूप आचार रूप लिंग को (व्यवस्थापनात्) पूर्वदेश में ही नियत होने से (प्रमाणम्) अनुमित श्रुतिरूप प्रमाण (तत्संयुक्तं) प्राच्य आदि पद से सम्पादित होगी ॥ १५ ॥ अब सिद्धान्त का निरूपण करते हैं। अपिवेति। होलाकादि आचार सब देशवासियोंका धर्म है, क्यों कि (विधानस्य) आचार से अनुमित श्रुति वाक्य (तन्न्यात्वात्) सबको होलाक आदि आचार का प्रापक है। अर्थात् वह प्राच्यादि से अघटित वाक्य का कल्पक तर्क है जिसमें ऐसा श्रुति वाक्य को

सामान्यश्रुतिकल्पनम् । अधि० ८ ।

अनुमानव्यवस्थानात्तत्संयुक्तं प्रमाणं स्यात् ॥ १५ ॥

होलाकाद्याचारः प्राच्यैरेव क्रियते । तन्मूलभूता कल्प्यमानाश्रुतिः होलाकाद्याचारः प्राच्यैः कर्तव्य इति कल्प्यते उत सा प्राच्याद्यघटितेति संशये पूर्वपक्षमाह । अनुमानेति । अनुमानस्य अनुमिति कारणीभूत लिङ्गस्याचारस्य व्यवस्थापनात्प्राग्देशे एव नियतत्वात् प्रमाणमन्विताश्रुतिः तत्संयुक्तं प्राच्यादिपदघटितं स्यात् ॥ १५ ॥

अपि वा सर्वधर्मःस्यात्तन्न्यायत्वाद्विधानस्य ॥ १६ ॥

होने । से प्राच्यत्वादिओं का अनुगतरूपसे निर्वचन करना अशक्य होने से प्राच्यादि घटित वाक्य का कल्पक यहां हेतु नहीं है यह भाव हैं ॥ १६ ॥ तो भी शिखा कर्म की भांति व्यवस्था क्यों न की जाय इस पर कहते हैं । दर्शनादिति । शिखायां " इस वाक्यमें गोत्र वाचक पद का मुण्डपद के समीप (दर्शनात्) श्रवण होने से (विनियोगः) व्यवस्था है यहां वैसा नहीं है यह भाव हैं ॥ १७ ॥ इस हेतु से भी विनियोग नहीं हो सक्ता है ऐसा कहते हैं । लिङ्ग इत्यादिसे । (नित्स्य) कर्ता विशेष का नियम करने वाले लिङ्ग = प्रमाण का अभाव होने से ॥ १८ ॥ परन्तु प्राच्यत्व जाती को स्वीकार करके उससे घटित श्रुति की कल्पना हो सक्ती है इस शंका के होनेपर कहते हैं । आख्येति । प्राच्यत्व जाति नहीं किंतु

सिध्दान्तमाह । अपिवेति । होलाकादिः सर्वेषां धर्मः स्यात् विधानस्याऽऽचारानुमितश्रुतेस्तन्न्यायत्वात् । सः प्राच्याद्यघटित वाक्य कल्पको न्यायः तर्कोऽयस्य तत्त्वात् । प्राच्यत्वादेरनुगतस्य निर्वक्तुमशक्यत्वेन प्राच्यादिघटित वाक्य कल्पकोऽहेतुर्नास्तीति भावः ॥ १६ ॥

दर्शना द्विनियोगःस्यात् ॥ १७ ॥

ननु शिखा कर्म वद् व्यवस्था किं नस्यादत्राह । दर्शनादिति । शिखायांमुण्डा भृगव इति गोत्रोपपद दर्शनाच् श्रवणा द्विनियोगः व्यवस्था इह तथा नेति भावः ॥ १७ ॥

प्राची देश के साथ संयोग होने से यह प्राच्य है ऐसा व्यवहार होता है, और देश संयोग अव्यवस्थित है ॥ १९ ॥ परन्तु जो प्राच्य इस यौगिक नामवाला है वह अन्य देश में जानेसे तो उसमें प्राच्य यह व्यवहार नहीं रहना चाहिये। व्यवहार का कारण प्रागदेश के संयोग का अभाव होने से इस शंका को करते हैं। नस्यादिति । प्राच्यादि समाख्यामें देश को निमित्त होनेपर दक्षिण देशादिओमें जानेपर प्राच्यादिओंमें प्राच्यादि व्यवहार नहीं होगा यह अक्षरार्थ है ॥ २० ॥ मथुरा में उत्पन्न हुए पुरुषका नाम माथुर इस अवयवार्थ की भांति (अत्रापि) प्राच्य में भी प्राची में उत्पन्न यह अवयवार्थ है, तथाच योग प्रयुक्त प्राच्य यह व्यवहार है, देश संयोग प्रयुक्त नहीं है जिससे कि देश सम्बन्ध का अभाव होने पर प्राच्य इस

लिङ्गाभावाच्चनित्यस्या ॥ १८ ॥

इतोऽपि नेत्याह। लिङ्गेति। नित्यस्य कर्तृ विशेष नियम कर्तुः लिङ्गस्याभावात् ॥ १८ ॥

आख्याहि देशसंयोगात् ॥ १९ ॥

ननु प्राच्यत्व जातिं स्वीकृत्य तद्घटित श्रुति कल्पनं संभवतीत्यत्राह । आख्येति । प्राच्य त्वं न जाति किंतु प्राची देश संयोगा द्व्यवहारः देश संयोगस्यचा व्यवस्थित त्वात् ॥ १९ ॥

नस्या द्देशान्तरेष्वितिचेत् ॥ २० ॥

व्यवहार का अभाव हो। परन्तु प्राच्य यह जो समाख्या है वह कर्ता का विशेषण होकर आचारों की व्यवस्था करने को समर्थ नहीं क्योंकि जो प्राच्य पुरुष दक्षिण देशादि में गया हुआ है उसका कथंचित् "तत्रभवः" इत्यादि योग संभव होने पर भी परन्तु उसके पुत्रपौत्र तथा प्रपौत्रादियों को किसी भी प्रकार से प्राच्यादि समाख्या का संभव न होने से और उनों के आचार को देखने से व्यभिचार आता है। इसलिये प्राच्यत्वादिक कर्ता के विशेषण नहीं हो सक्के अतः उससे आचार की व्यवस्था युक्त नहीं ॥ २१ ॥ परन्तु प्राच्यत्वादि कर्ता के विशेषण होकर आचार का व्यवस्थापक मत हो तो भी होलाकादि ओंका तथा करञ्जवृक्षादि पूजन का प्राच्य देश में तथा कृष्णमृद्वाले देश में आचार होने से प्राच्य देश

ननु यः प्राच्य इति समाख्यावान्सोऽन्यस्यां दिशिगतः तदाप्राच्य इति व्यवहारोनस्यात्। प्राग्देश संयोगस्य व्यवहार निमित्तस्या भावादितिशङ्कते। नस्यादिति। प्राच्यादि समाख्याया देश निमित्तत्व दक्षिण देशादिगतेषु प्राच्यादिषु प्राच्यादि व्यवहारोनस्यादित्यक्षरार्थः॥ २०॥

स्याद्योगाख्याहिमाथुरवत्॥ २१॥

मथुरायां भवोमाथुर इति योगवद त्रापिप्राच्यांभव इति योगः तथाचयोग प्रयुक्तः प्राच्य इति व्यवहारो न देश संयोग प्रयुक्तो येन देश संयोगाऽभावे प्राच्य इति व्यवहारो निवर्त्तेत। न त्वेषा समाख्या कर्तृविशेषणमाचारा न्व्यवस्थापयितुमीष्टे,

---

तथा तादृश भूमि (कर्मधर्मः) कर्म का अङ्ग होकर आचार का व्यवस्थापक हो। वैश्वदेव कर्म में जैसे प्राचीन प्रवण देश अङ्गहै तद्वत्॥ २२॥ जैसे कृष्ण वर्ण वाले कर्तासे अनुष्ठित कर्म में कृष्ण वर्ण कर्माङ्ग नहीं वैसाही प्राच्यादि देश तथा देशवर्ण भी कर्माङ्ग नहीं इस अभिप्राय से समाधान करते हैं। तुल्यं इत्यादिसे। प्राच्यादि देश आचार के व्यवस्थापक नहीं क्योंकि वह देश कर्ता के धर्म श्यामत्वादिके समान है। अतः होलाकादि आचार सर्व धर्म है वैश्वदेव कर्म में प्राचीन प्रवण तो श्रुति से नियत व्यवस्थित है॥ २३॥ साधु शब्दों के प्रयोग का नियम है इस की सिद्धि के लिये नवम अधिकरण करते हैं। व्याकरण शास्त्र प्रमाण है किंवा नहीं इस संशय के होने पर पूर्वपक्ष कहते हैं। प्रयोगेति। प्रयोग के उत्पत्ति से लघु

यः प्राच्यो दक्षिणदेशादिगतः तस्यकथं चित् "तत्रभवः" पा० सू० ४ । ३ । ५३ इत्यादि योग संभवेऽपि तत्पुत्र पौत्र-प्रपौत्रादीनां कथमपिप्राच्यादिसमाख्याया असंभवेन तदा-चारस्य दर्शनेन व्यभिचारात् । अतः प्राच्यत्वादिकं न कर्तृ-विशेषणमितिनतत आचारस्य व्यवस्थायुज्यते ॥ २१ ॥

कर्मधर्मोवाप्रवणवत् ॥ २२ ॥

नतु मास्तु प्राच्यत्वादिः कर्तृपरिच्छेदः सनाऽऽचार व्यवस्थापकः तथापि होलाकादेः करञ्जवृक्षादि पूजनस्यच प्राच्यदेशे कृष्णमृद्वतिदेशेचाऽऽचारात्प्राच्यदेशः तादृशभूश्चकर्म-

---

पद प्रयोग के नियम में अर्थात् गौः ऐसा ही प्रयोग करना चाहिये गावी ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहिये इस नियम में केवल व्याकरण ही कारण हो सक्ता है, और व्याकरण को मूलभूत श्रुति रहित होने से (अशास्त्रत्वात्) अप्रमाणत्व होने के कारण (शब्देषु) गो, गाव्यादि साधु असाधु शब्दों में (न व्यवस्थास्यात्) नियम नहीं हो सक्ता । तात्पर्य यह है कि गो शब्द साधु है और गावी, गोणी, आदि शब्द असाधु है यह व्यवस्था व्याकरण से हो सक्ती है, परन्तु साधुपद की निष्पत्ति में व्याकरण वेद मूलक न होने से स्वयं अप्रमाण है, इस लिये उसके अनुसार साधुपद का प्रयोग करना और असाधुका न करना यह नियम नहीं हो सक्ता ॥ २४ ॥ अब सिद्धान्त को कहते हैं । शब्द इत्यादि से । गो गावी आदि शब्दों

धर्मः कर्माङ्गसत् व्यवस्थापकम् । वैश्वदेव कर्मणि पाचीन प्रवणदेशवत् ॥ २२ ॥

तुल्यंतुकर्तृधर्मण ॥ २३ ॥

यथाकृष्णवर्णकर्त्राऽनुष्ठितकर्मणि कृष्णवर्णो न कर्माङ्गन्तथा दशवर्णोपीत्यभिप्रायेण समाधत्ते। तुल्यमिति । न प्राच्यादिदेश आचार व्यवस्थापकः तद्धि कर्तृधर्मेण श्यामत्वादिना तुल्यं भवति । अतोहोलाकाद्याचारःसर्वधर्मः। वैश्वदेव कर्मणिप्राचीन-प्रवणंतु श्रुत्यानियतम् ॥ २३ ॥

साधुपद प्रयोग नियमः । अधि० ९ ।

में व्यवस्था नहीं हो सक्ती यह जो कथन किया गया है वह ठीक नहीं क्योंकि (शब्दे) साधु शब्द में (प्रयत्नेन) जो स्वर वर्णादि हैं उनों का लोप हो जायगा इस भय के कारण साधु शब्द का प्रयोग करना चाहिये असाधु शब्द का नहीं इस व्यवस्था की व्याकरणानुसार (निष्पत्तः) उत्पत्ति है स्वर वर्ण आदि के अभाव में अपराध भागित्व का=दोषयुक्तत्व का श्रवण भी है इसलिये गोशब्द साधु है और गावी शब्द तो असाधु है । साधु शब्द का प्रयोग करना चाहिए असाधु शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यह फलितार्थ है । साधु तथा असाधु शब्द का ज्ञान व्याकरण द्वारा होता है । और वह वेद मूलक होने से शब्द सिद्धि में सर्वथा प्रमाण है जिसका मूल

प्रयोगोत्पशास्त्रत्वाच्छब्देषु न व्यवस्थास्यात् ॥ २४ ॥

व्याकरण शास्त्रं प्रमाणं नवेति संशये पूर्वपक्षमाह। प्रयोगेति। प्रयोगोत्पत्तौ प्रयोगनियमे गौरि त्येव प्रयोक्तव्यं नतुगावीतिनियमे व्याकरणस्य निर्मूलत्वेनाशास्त्रत्वाच्छब्देषु गोगाव्यादि शब्देषु न व्यवस्थास्यात् ॥ २४ ॥

शब्दे प्रयत्ननिष्पत्तेरपराधस्यभागित्वम् ॥ २५ ॥

सिद्धान्तमाह। शब्द इति। यदुक्तं गोगाव्यादि शब्देषु न व्यवस्थास्यादिति तन्न = शब्दे = साधु शब्दे प्रयत्नेन = स्वरवर्णादि लोप भीतिपूर्वकतयाव्यवस्थायाः निष्पत्तेः = उत्पत्तेः।

भूत मंत्र यह है " द्वे विद्ये " इत्यादि ॥ २५ ॥ यद्यपि गव्यादि शब्द असाधु है तो भि गोशब्द तथा गावी शब्द दोनों में अर्थ-वत्ता रहो क्या हानि। इसपर कहते हैं अन्याय इति; अनेक = शब्दो वाचकोयस्यै कस्या र्थस्य सः अनेक शब्दः। तस्य भावस्तत्त्वम्। एक को अनेक शब्द का अर्थ मानना ठीक नहीं। क्योंकि अनेक पदों में शक्ति की कल्पना करने में गौरव आता है। और हस्त, पाणि कर आदि शब्दों में तो अगत्या उसका स्वीकार किया जाता है यह भाव है ॥ २६ ॥ ननु एक को वाचकता और शब्दों को अशक्ति जता रहो; तो भी गो आदि शब्द ही वाचक तथा साधु है और गावी आदि शब्द तो अशक्तिज हैं इसमें नियामक कौन है इसपर कहते है; तत्रेति (तत्र) संस्कृत शब्द तथा असंस्कृत शब्द में (तत्वम्)

वर्णस्वरादि लोपे अपशब्द भागित्वस्य = दोषयुक्तत्वस्य श्रवण-मप्यस्ति, अतोगोशब्दः साधुः गावी शब्दस्त्व साधुरिति फलितो र्थः। साध्व साधु शब्द योज्ञानश्च व्याकरणेनस्यात् तस्यचवेद मूलकत्वेन शब्द सिद्धौ सर्वदा प्रामाण्यं यस्यमूलभूताऽयंमन्त्रः "द्वे विधे वेदितव्ये इतिहस्मयद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापराच। "तत्रापरा" ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तंछःन्दो ज्योतिषमिति ॥ २५ ॥

अन्यायश्चानेकशब्दत्वम् ॥ २६ ॥

साधुत्व तथा असाधुत्व का ज्ञान (अभियोग विशेषात्) व्याकरण शास्त्र के अभ्यास जनित संस्कार विशेष से (स्यात्) होता है॥ २७॥ परन्तु गावी आदि पद से गौ का ज्ञान शक्ति भ्रम से कहना होगा। तो भी भ्रम में क्या कारण है इस आकांक्षा के होनेपर कहते हैं। तदिति। (तद्) तत्र = गोपद में (अशक्तिः) शक्ति का अभाव है अर्थात् करण के कुछ अदक्षता रूप दोस से गोशब्द के यथा वदुच्चारण का किसी काल में असामर्थ्य हो गया वही भ्रम में कारण प्रतीत होता है। तथापि शक्ति के भ्रम मात्र से गावी शब्द में गोरूप अर्थ बोध कैसे होने लगा। इसपर कहते हैं (तदनुरूपत्वात्) गो शब्द के समान होने के कारण उनसे जो रूप अर्थ का बोध होने लगा इसमें कोई बाधक नहीं। यह अभिप्राय है कि

ननु गोशब्दस्य गावी शब्दस्योभयोरप्यर्थवत्त्व मास्ता-मत आह। अन्याय इति अनेक शब्दत्वमनेक शब्दवाच्यत्वम-न्याय्यमनुचितम्। अनेक पदेषु शक्तिकल्पनायां गौरवाद्, हस्त पाणि करादि शब्देषु त्वगत्या तत्स्वीकार इति भावः। २६।

तत्र तत्वमभियोगविशेषात् स्यात् ॥ २७ ॥

ननु अस्त्वेकस्य वाचकता, इतरेषां त्वशक्तिजता। तथा-पिगवादि शब्दा एव वाचकाः साधवः। गाव्यादि शब्दा-स्त्व शक्तिजा इत्यत्र विनिगमकं किमित्यत आह। तत्रेति, तत्र संस्कृतशब्द असंस्कृतशब्देच तत्वं साधुत्वाऽसाधुत्व ज्ञानमभि-

---

गो शब्द के उच्चारण की इच्छावाले किसी पुरुष ने कण्ठ में दोष के वलसे गावी ऐसा कहा। शिष्य ने उसके अभिप्राय को जानकर गौ को लाया, समीपस्थ पुरुष गावी शब्द गो का वाचक है इस भ्रम से गावी शब्द का प्रयोग किया उसको देखकर फिर अन्य पुरुष ने किया इस प्रकार अंध परंपरा से गो में गावी शब्द का शक्तिभ्रम है यह भाव है॥ २८ ॥ इस प्रकार एक देश का विकार होनेपर भी अर्थ स्मरण का स्वीकार होने से ही "अश्मकेभ्य आगच्छति=अश्मक नामक देशों से आता है इत्यादि स्थलों में पञ्चमी विभक्ति के स्थानमें "अश्मकैरागच्छति" इस तृतीया का प्रयोग रूप विभक्ति का व्यत्यय होने पर भी अर्थात् अन्य विभक्ति का उच्चारण होने पर भी प्राति-पदिक रूप अंश के तुल्य होने के कारण श्रोता को उनसे पूर्वोक्त अर्थ का बोध हो जाता है अश्मक शब्द को " अश्मं-

योगविशेषाद् व्याकरण शास्त्राभ्यास जनित संस्कार विशेषात् ॥ २७ ॥

तदशक्तिश्च तदनुरूपत्वात् ॥ २८ ॥

ननु गाव्यादिपदाद् गोबोधश्च शक्तिभ्रमाद्वाच्यः । भ्रमे मूलं किमित्याकांक्षायामाह । तदिति । तत्र गोपदे अशक्तिः किञ्चित्करणापाटवदोषादुच्चारणाऽसामर्थ्यं क्वचित्कल्पते नन्वेतावता गावी शब्दे गवार्थत्वं कथमत्राह । तदनुरूपत्वात् गोशब्दसदृशत्वात् । अयमभिप्रायः केनचिद्गो शब्दोच्चारणेच्छावता कण्ठ दोषवशेन गावीत्युक्तं शिष्येण तदभिप्रायंज्ञात्वा

कभ्यः" इस समुदाय का एक देशत्व होने से उस एक देश से अश्मक देश का स्मरण होता है। वैसा ही गावी शब्द को (गौ) इस शब्द का एक देशत्व होने से गो का स्मरण हो सक्ता है यह भाव है ॥ २९ ॥ लोक और वेद में शब्द तथा अर्थ का भेद नहीं इसकी सिद्धि के लिए दशम अधिकरण की रचना करते हैं। लोक तथा वेद में शब्द और अर्थ भिन्न हैं किंवा अभिन्न हैं इस संशयके होनेपर शब्द तथा अर्थ भिन्न हैं। क्यों कि देवासः इत्यादि शब्दों का रूप भेद है और "उत्ताना" इत्यादि वाक्यों से अर्थ भेद भी पाया जाता है ऐसा बहिः पूर्वपक्ष होने पर सिद्धान्त कहते हैं। प्रयोगे इति। सूत्र से पूर्व उभयोर्भेदे इस पद की योजना करनी चाहिए (प्रयोगस्य) वाक्य के (चोदना) उच्चारण से जो अर्थज्ञान होता है उसके (अभावात्) अभावका प्रसंग हो जाने से यह भाव है कि

गौरानीता समीपस्थो गावी शब्दो गोवाचक इति भ्रमेण गावी शब्दं प्रायुङ्क्त तद्दृष्ट्वाऽन्यः एवमन्ध परंपरया गोशक्ति भ्रम इति भावः ॥ २८ ॥

एकदेशत्वाच्च विभक्ति व्यत्यये स्यात् ॥ २९ ॥

एवमेकदेश विकारेऽप्यर्थस्मरणाङ्गीकारादेत्र अश्मकैराग-च्छतीति पञ्चमीस्थाने तृतीया प्रयोगे विभक्तेर्व्यत्ययेऽपि-अन्यस्योच्चारणेऽपि अर्थज्ञानं दृश्यते।। अश्मकेभ्य इति समुदा-यैकदेशत्वादश्मक शब्दस्य तस्मादश्मकदेशस्मरणमिति तथा गावी शब्दस्य गौरिति शब्दैकदेशत्वाद्गो स्मरणमुपपन्नमिति भावः ॥ २९ ॥

वैदिक शब्दार्थों को लौकिक शब्दार्थों से भिन्न होने पर उन्हों को अपूर्व होने से शक्ति ज्ञान नहीं हो सक्ता और उसके न होने से अर्थ ज्ञान नहीं होगा। इसलिए शब्दों का (अवि-भागात्) अभेद होने से अर्थों का भी अभेद है लोक में पदों का ज्ञातशक्तिक होने से अर्थ ज्ञान हो सक्ता है (देवाः देवासः) इन शब्दों के स्वरूप भेद पाये जाने से पद भेद है यह जो कहा गया है उसका समाधान करना चाहिए। न्यूनाधिक जन्य स्वरूप भेद होने पर भी अर्थ ज्ञान में उपयोगी धर्म भेद का अभाव होने से पद का भेद नहीं होसक्ता जहां अर्थ ज्ञान में उपयोगी धर्म भेद है वहां पद का भेद होता है जैसे पूर्वपद प्रकृति स्वर के होने पर बहुव्रीहित्व का अवगम होने से अन्य पदार्थ वृत्तिता का और अन्तोदात्त होने पर तत्पुरुषत्व

लोकवेदयोः शब्दार्थैक्यम् । अधि १० ।

प्रयोगचोदनाभावादर्थैकत्वमविभागात् ॥ ३० ॥

लोकवेदयोः शब्दार्थौ भिन्नौ उताभिन्नाविति संशये शब्दार्थौ भिन्नौ । देवाः भवति कर्णैः । देवासः भवाति कर्णेभिरितिरूपभेदात् । "मनुष्य गवास्त्ववाश्चोवहन्ति, उत्ताना-हि देव गवा वहन्तीति चार्थ भेदादितिवहिः पूर्वपक्षे सिद्धान्त माह । प्रयोगेति । सूत्रात्पूर्वमुभयोर्भेदे; इति पूरणीयम् । प्रयोगस्य वाक्यस्य चोदना उच्चारणजन्यार्थ प्रतीतिः तद-भावात् । अभाव प्रसङ्गात् । अयंभावः । वैदिक शब्दार्थयो-

---

का अवगम होने से स्वार्थ वृत्तिता का ज्ञान व्याकरण से होता है और "उताना" इत्यादि वाक्यार्थ भेद का ज्ञापक है यह जो कहा गया है वह भी ठीक नहीं क्योंकि उस वाक्य में जो उत्तान वहन करते हैं वे देवताओं की गौ हैं ऐसा गो शब्द का अर्थ विधान करने को शक्य नहीं. ऊपर को पाद करके चलने की अप्रसिद्धि होने से; इसलिए वायु पुराण उक्त रीति से पृथिवी गोलक तथा त्रिलोकी के भ्रमण वश से देव भी कभी इस पृथिवी लोक को ऊपर देखते हैं. उनकी दृष्टि को आश्रित करके गौवों का उत्तान वहन कहा गया है दक्षिणा त्वादि से देव सम्बन्धी इन गौवों का उत्तान गमन स्तुति के लिए अनुवाद किया गया है ॥ ३० ॥ पदों की व्यक्ति में किंवा जाति में शक्ति है इस संशय के होने पर पूर्व पक्ष को कहते हैं। अद्र्येतति । जाति वाचक पक्ष में कृपा वाचकता नहीं होगी

भिन्नत्वे तयोरपूर्वकत्वेन शक्ति ग्रहासम्भवादर्थ ज्ञानं नस्यादिति । अतः शब्दानां विभागादभेदादर्थैक्यमपि लोकेगृहीतशक्तिकत्वात्तदुपपत्तिः । यदुक्तं देवाः देवास इति स्वरूपभेदापदभेदः । तस्य समाधानं कर्तव्यं न्यूनातिरेक कृतस्वरूपभेदेसत्यपि अर्थ प्रतीत्यौपयिक धर्म भेदा भावात् न पदभेदः । यत्रार्थ प्रतीत्यौपयिक धर्म भेदः तत्र भिद्यते एव पदम् । यथा पूर्वपद प्रकृति स्वरत्वे वहुव्रीह्यर्थत्वं अन्तोदात्तत्वे स्वार्थवृत्तितास्मरणादवगम्यते । यच्चोक्तम् । " उत्ताना वै देवगवा वहन्तीत्यर्थ भेदज्ञापकमिति तदपि न । तत्र ये उत्ताना वहन्तीत्युद्दिश्य गो शब्दवाच्यत्वं न विधातुं शक्यम् । उत्तानवहनस्या-

---

यदि शब्द का अर्थ जाति माना जाय तो वह शब्द द्रव्य के आश्रित रहने वालों का वाचक नहीं होगा यह फलितार्थ है एका देया इत्यादि वाक्यों में दो छः आदि का देना कहा है वह जाति पक्ष में नहीं बन सक्ता क्योंकि जाति एक होने से दो छः आदि संख्या के अन्वय का असम्भव होने से अद्रव्य वाचकता हो ऐसी इष्टापत्ति नहीं कर सकते इसलिए शब्द का अर्थ जाति नहीं किन्तु व्यक्ति ही है यह भाव है ॥ ३१ ॥

इससे भी शब्द का अर्थ जाति नहीं ऐसा कहते हैं । अन्येति । अन्य पद के अर्थ को देखे जाने से यदि उपाकृत पशु पलायन कर जाय तो अन्य पशुको उपाकरण संस्कार करे (उपाकरणञ्च तृणे न पशोरूप स्पर्शनम्) इस स्थल में अन्य पदार्थ का पशु पदार्थ के साथ अन्वय बोध कहना होगा । और वह अन्वय

प्रसिद्धत्वात् । अतो वायुपुराणोक्तरीत्या पृथिवी गोलक त्रैलोक्य भ्रमणवशाद्देवा अपि कदाचिदिमं लोकं उपरिपश्यन्तीति तद्दृष्टिमाश्रित्य एतेषामेव गवां दक्षिणात्वादिना देवसम्बन्धिनामुत्तानवहनं स्तुत्यर्थमनुकीर्त्यत इत्यर्थः ॥ ३० ॥

आकृतिशक्तिः । वर्णकान्तरम्
अद्रव्यशब्दत्वात् ॥ ३१ ॥

पदानां व्यक्तौ जातौ वा शक्तिरिति संशये पूर्वपक्षमाह । अद्रव्येति । जाति वाचकत्व पक्षे अद्रव्य वाचकता स्यादित्यर्थः । यदि जातिः शब्दार्थोभवेत् तदा द्रव्याश्रय-

---

बोध सम्भव नहीं । पशु पदार्थ जातिको एक होने से उस जाति में अन्य पदार्थ का अन्वय बोध तेरे मत में असम्भव होने से । और जाति का दौडना भी असम्भव होने से । इसलिये व्यक्ति में ही शक्ति है इस पद की पूर्ति करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ सिद्धान्त को कहते हैं । आकृति रिति । (क्रियार्थत्वात्) जातिको शब्दार्थ मानने पर " श्येन चितं-चिन्वीत " इत्यादि वाक्यों का श्येन सदृश अग्न्या धार चबूतरा विशेष का निष्पादक चयनादि क्रिया का प्रति पादकत्व रूप प्रयोजन का सम्भव होने से, और व्यक्ति को शब्दार्थ मानने पर उसका असम्भव होने से (आकृतिः) जाति ही शब्दार्थ है व्यक्ति नहीं । यह भाव है कि जाति का भान होता है ऐसा व्यक्ति शक्ति वादी को भी अवश्य कहना पढेगा । (अन्यथा) जाति भानका अनङ्गीकार करने पर

वचन = शब्दोन भवेदिति यावत् । एकागौर्देय द्वे गावौ देये षड्गावो देयाः इत्यादौ जातेरेकत्वेन संख्या न्वयासम्भवादिष्टापत्तिर्न सम्भवति इति भावः ॥ ३१ ॥

अन्यदर्शनाच्च ॥ ३२ ॥

इतोऽपि न जाति रर्थ इन्याह । अन्येति । अन्य शब्दार्थस्यदर्शनात् । यदि पशुरूपाकृतः पलायेतान्यं पशुमुपाकुर्यादित्यत्र अन्य पदार्थस्य पशुपदार्थे नान्वयो वाच्यः । स नसम्भवति । तवमते जातेः पशुपदार्थस्यैक त्वेन तत्रान्य पदार्थान्वया

" श्येनचित्तं चिन्वीत " इस वाक्य के अर्थ की असिद्धि हो जायगी । (तथाहि) देखो धान्वर्थ में श्येनका क्या करणता रूपसे अन्वय है किंवा कर्मता रूपसे । इनमें प्रथमपक्ष नहीं बन सक्ता । क्योंकि " कर्मण्यग्न्याख्यायाम् " ऐसा पाणिनी सूत्र है श्येनादि रूप कर्म वाचक के उपपद होने पर और धात्वर्थ को भी कर्म कारक होने पर अग्न्या धार स्थल विशेष की संज्ञा की कर्तव्यता में चिनोति धातु से क्विप् प्रत्यय हो ऐसा उसका अर्थ है । इस प्रकार उक्त सूत्र के अनुसार श्येन सदृश में लक्षणा को स्वीकार करके श्येन सदृश चीयमान स्थल विशेष को चयन क्रिया से सम्पादन करे ऐसा वाक्यार्थ होता है । करणत्व रूप से अन्वय करने में कर्म वाचक को उपपद में न होने से निरुक्त सूत्र के साथ विरोध आता है। इसलिये अवश्य कर्म त्वरूप से अन्वय करने के लिये सादृश्य में लक्षणा करके श्येन पदार्थ को कर्मत्व संपादन करना

सम्भवात् । जातेः पलायना सम्भवात् । अतो व्यक्तावेव शक्ति रितिपूरणीयम् ॥ ३२ ॥

आकृतिस्तुक्रियार्थत्वात् ॥ ३३ ॥

सिद्धान्तमाह । आकृतिरिति । क्रियार्थत्वात् आकृतेर्वाच्यत्वे सत्येव श्येन चितंचिन्वीत इत्यादि वाक्यानां श्येनसदृशान्याख्य स्थण्डिल विशेष निष्पादकचयनादिरूप क्रियायाः प्रतिपादकत्व रूपप्रयोजनस्यसम्भवात्, व्यक्तेर्वाच्यत्वेच तदसंभवात् क्रिया प्रयोजनत्वात् । आकृतिः जातिः । सैवपद वाच्या । अयं भावः । व्यक्ति शक्ति वादि नाऽप्यवस्यं जाति भासत इति

चाहिये । चयन क्रिया काफल श्येन सादृश्य है ताहशं गौणफल को ही "श्येन चितं चिन्वीत स्वर्ग कामः" इस वाक्य में स्वर्ग साधनता प्रतीत होती है । इस परिस्थिति में केवल व्यक्ति शक्तिवादि को यावद् व्यक्ति सादृश्य अभिप्रेत । है किंवा यद्किञ्चिद् व्यक्ति सादृश्य । सर्व व्यक्तियों के सादृश्य को एक काल में सं भव न होने से प्रथम पंक्ष अयुक्त है । द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं, क्योंकि वेद के तात्पर्य का विषय भूत जिस व्यक्ति का सादृश्यथा उस व्यक्ति के नाश हो नेपर अनुष्ठान की लोपकी प्राप्ति होगी । तात्पर्य का विषय भूत वस्तु के अभाव के कारण अगत्या श्येनत्व के आश्रय का सादृश्य कहना होगा । तथाच श्येनत्व जाति के ज्ञान को आवश्यक होने स उसके बोध के लिये तरे को भी आवश्यक है जाति में शक्ति मानना । तथा सति जाति शक्ति से सब कार्य

वाच्यम्। अन्यथा श्येन त्रितंचिन्वीतेति वाक्यार्था नुपपत्तिः। तथाहि। धात्वर्थे श्येनः किं करणत्वेनान्वेत्युत कर्मत्वेन। नाद्यः। कर्मण्यग्न्याख्यायामिति पाणिनि सूत्रम्। कर्म वाचके श्येनादि-रूपे उपपदे धात्वर्थेऽपि कर्माणि अग्न्याख्य स्थण्डिल संज्ञायां कर्तव्यायां चिनोते र्धातोः क्विप्स्यादिति तदर्थः। इत्थं चोक्त-सूत्रानुसारेण श्येनसदृशे लक्षणंस्वीकृत्य श्येन सदृशं चीयमानं स्थण्डिलं चयनक्रियया भावयेदिति वाक्यार्थः संपद्यते। करणत्वेनान्वये कर्म वाचकोप पदाभावेन निरूक्त सूत्र विरोधः। अतोऽवश्यं कर्म त्वेनान्वये सादृश्य लक्षणया कर्मत्वं श्येन पदार्थस्य संपादनीयम्। चयनक्रियायाः फलं श्येन सादृश्यं तादृशगुणस्यैव श्येनचितं चिन्वीतस्वर्गकाम इन्यत्र स्वर्ग-साधनत्वं प्रतीयते। एवं सति केवल व्यक्ति शक्ति वादिना यावत् व्यक्ति सादृश्य मिष्यत उत यत्किंचिद् व्यक्ति सादृश्यम्।

का निर्वाह होने पर व्यक्ति शक्ति निरर्थक है इसलिये बहुत विस्तार नहीं करना। इसी अर्थ को भट्टपाद ने भी कहा है कि जाति रूप विशेषण के बोधन में क्षीण है सामर्थ्य जिसकी वह अभिधा शक्ति विशेष्य को बोधन नहीं कर सक्ती॥३३॥ अब उक्त सिद्धान्त में दूषणों को देते हैं। नेति। जाति पक्ष में "व्रीहीन् प्रोक्षति" इस वाक्य में जाति के प्रोक्षण रूप क्रिया का विधान है वह नहीं होगा। तथा पदार्थान्तर में अन्य पशु के स्थान में अन्य पशु का विधान है वह भी नहीं होगा।

सर्व व्यक्ति सादृश्य स्यैकत्रासं भवान्नाद्यः । न द्वितीयः । यद् व्यक्ति सादृश्यं वेदतात्पर्य विषयीभूत तन्नाशेऽनुष्ठान लोपापत्तिः । तात्पर्य विषयीभूत वस्तुनोऽभावादगत्या श्येनत्वाश्रय सादृश्यमिति वाच्यम् । तथाच श्येनत्व बोधस्यावश्यकतया तद्बोधार्थं तत्रापि शक्तिस्त वावश्यकी । तथा सति तत्रैव शक्त्या सर्व कार्य निर्वाहे व्यक्ति शक्तिः निरर्थकेति बहुविस्तरेणालम् । इममेवार्थं भट्टपादाः आहुः । विशेष्यं नाभिधागच्छेत् क्षीण शक्ति र्विशेषणे " इति ॥ ३३ ॥

न क्रियास्यादिति चेदर्थान्तरे विधानं न द्रव्य मिति चेत् ॥ ३४ ॥

सिद्धान्ते दूषणान्याह । नेति । व्रीहीन्प्रो क्षतीत्यत्र जातेः प्रोक्षण रूपाक्रिया नस्यात् । तथा पदार्थान्तरे अन्य पशुस्थाने

(द्रव्यं) एकादेया षड्देया इत्यादि द्रव्याश्रय कार्य्यं न होगा (चेत्) यदि (इति) ऐसा कहो तो ठीक नहीं । इसके आगे सूत्रसे सम्बन्ध है । सूत्र में दो इति प्रक्षेपसे आया है ॥ ३४ ॥ अब सिद्धान्ती उक्त दोषों का परिहार करता है । तदर्थ त्वादिति । उक्त व्रीहि आदि पदोंका लक्षणा द्वारा व्रीहि आदि स्वरूप व्यक्ति रूप अर्थहोनेसे (प्रयोगस्य) व्रीहीन् प्रोक्षति इत्यादि प्रयोगके अर्थ का (अविभागः) बाध नहीं । और भट्ट पादने भी इसी बातको कहा है । आनन्त्य व्यभिचार तथा शक्ति के अनेकत्व दोषसे व्यक्ति में शक्ति नहीं आकृति तो शक्ति है यह सब संगत है ।

अन्यपशो र्विधानं नस्यात्। द्रव्यं द्रव्य कार्य्य मेकादेया षड्-देया इतिच नस्यात्। इति द्वयं संपातायातम्॥ ३४॥

तदर्थत्वात्प्र योगस्या विभागः॥ ३५॥

सिद्धान्त्युक्त दूषणानि परि हरति। तदर्थत्वादिति। उक्तानां व्रीह्यादि पदानां लक्षणया तदर्थत्वात् व्रीह्याद्यर्थत्वात् प्रयोगस्य व्रीहीन् प्रोक्षतीति प्रयोगस्या विभागः अबाधः। तदुक्तं भट्ट पादैः। आनन्त्य व्यभिचाराभ्यां शक्त्यनेकत्व दोषतः। नव्यक्तावा कृतौ तुस्यात्सर्वं मेतत्समञ्जसम्। अन्वय व्यतिरेकभ्यामेकरूप प्रतीतितः। आकृतेः प्रथमं ज्ञानेतस्या-एवाभिधेयता। व्यक्त्या कृत्यो रभेदाच्च व्यवहारोपयोगिता। लिङ्ग संख्यादि संबन्धः सामानाधिकरण्यधीः। सर्वोपपन्नाच यतस्तस्मात् तत्रैव कल्पयेदिति"॥ ३५॥

इति जैमिनिसूत्रवृत्त्यां प्रथमस्याध्यायस्य

तृतीयःपादः॥ ३॥

अन्वयव्यतिरेकसे एकरूप प्रतीतसे और आकृतिं के प्रथम ज्ञान से उस आकृतिकोही वाच्यत्व है। व्यक्ति और आकृति इन दोनों के अभेदसे आकृति को व्यवहार में उपयोगिता है लिङ्ग संख्यादिओंका सम्बन्ध और सामानाधि करण्यका ज्ञान जिस कारण ये सब उपपन्न होते हैं इस कारण उसी में शक्ति की कल्पना करनी चाहिये॥ ३५॥

ब्रह्मचारी श्री सर्वेश्वरानन्दकृत प्रथमाध्याय के तृतीय पादके जैमिनिसूत्रवृत्तिका अनुवाद समाप्त

उद्भिदादि शब्दानां यागनाम ताधिकरणम् ॥ १ ॥

उक्तंसमाम्नायै तदर्थं तस्मात् सर्वं तदर्थंस्यात् ॥ १ ॥

विद्यर्थ वाद मन्त्राणां विधिस्तु त्यनुष्ठेयार्थ प्रकाशै धर्मे-प्रामाण्यं दर्शितम् । इदानी मुद्भिदायजेते त्यत्रोद्भिदादि-पदानां कथं प्रामाण्यमिति प्रश्ने पूर्व पक्ष माह । उक्तमिति । समाम्नायस्य वेदस्यैतदर्थ्यं विधिस्तु त्यनुष्ठेयार्थ त्वमुक्तं यस्मात्तस्मा त्सर्वं वैदिकं पदं तदर्थ मुक्तान्यतमार्थं स्यात् ॥ १ ॥

अपिवा नामधेयंस्याद्यदुत्पत्तावपूर्वं मविधाय कत्वात् ॥२॥

उद्भि दादि शब्द याग के नाम हैं इसकी सिद्धि के लिये अधिकरण रचना करते हैं । पूर्व के तीन पादों में विधिवाक्य अर्थ वाद वाक्य तथा मन्त्रों को विधि स्तुति तथा अनुष्ठेय अर्थ के प्रकाश द्वारा धर्म में प्रामाण्य देखाया जा चुका है । अब " उद्भिदायजेत " ता० ब्रा० १९।७।३ .वलभिदायजेत ता० ब्रा० १९।७।१ इत्यादि स्थलों में उद्भिदादि पदों को कैसे प्रामाण्य है इस प्रश्न के होने पर पूर्व पक्ष को कहते हैं । उक्त मित्यादि से । (समाम्नायस्य) समस्त वेद को (ऐतदर्थ्यं) विधि स्तुति तथा अनुष्ठेयार्थ का प्रकाशार्थत्व' है यह अर्थ (यस्मात्) अध्ययन विधि के वश से (उक्तं) अर्थ वादाधि करण में व्यवस्थित किया जाचुका है (तस्मात्) व्यवस्थित होने से सब वैदिकपद (तदर्थं) उक्त अन्यतम अर्थ वाले हैं ॥१॥ अब उक्त पूर्व पक्ष का समाधान करते हैं ।

सिद्धान्तमाह । अपिवेति । अपिवेति शब्दः पूर्वपक्ष व्यावृत्तौ आगतः । यस्य पदस्योद्भि दादे रुत्पत्तौ प्रथम श्रवणे अपूर्व मर्थान्तरे रूढ़त्व ज्ञानं न, तद् उद्भिदादि पदं कर्मनाम धेयंस्यात् । अवि धायकत्वाद्, नामत्व संभवे सति गुण विध्यसं भवात् । गुण विधौमत्वर्थ लक्षणापत्तेरिति भावः ॥२॥

चित्रादि शब्दानां यागनाम ताधिकरणम् ॥ २ ॥

यस्मिन् गुणोपदेशः प्रधानतोऽभि संबन्धः ॥ ३ ॥

चित्रयायजेत पशुकामः "तै० सं० २।४।६।१ इत्यत्र चित्रापदस्य गुणेरूढत्वेन नामत्वा संभवादग्नीषोमीयपश्वनुवादेन

अपिवेति । (अपिवा) शब्द पूर्व पक्ष के निराकरणार्थं आया है (यद्) जिस उद्भि दादि पद के (उत्पत्तौ) प्रथम श्रवण (अपूर्व) किसी अन्य अर्थ में प्रसिद्ध न हो, वह उद्भि दादि पद (नाम धेयं) यागका नाम (स्यात्) है (अविधायकत्वाद्) नाम त्वका संभव होने पर उक्त वाक्य किसी गुण भूत द्रव्य विशेष का विधाय कहो यह संभव नहीं । गुण का विधान मानने से उक्त पदों की उद्भि दादि नाम वालों में मत्वर्थ लक्षणा करनी पडती है, क्योंकि यज् धातु का अर्थ याग क्रिया है और आपके मत में उद्भि दादि द्रव्य विशेष हैं, इस लिये क्रिया और द्रव्य का समानाधिकरण मत्वर्थ लक्षणा से विना नहीं बन सक्ता और नाम का विधान मानने में उक्त लक्षणा करनी नहीं पडती क्योंकि याग और उसके नाम का

चित्रत्व स्त्रीत्वोभयविधिरिति पूर्व पक्षे सिद्धान्तमाह । यस्मिन्निति । यस्मिन् वाक्ये रूढ्या अनेक गुणोपदेशः प्रतीयते नासौगुणविधिः । वाक्यभेद प्रसङ्गादिति पूरणीयम् । चित्रापदस्य कागतिस्तत्राह । प्रधानतः धात्वर्थेनसाकं नामत्वेनाभिसंबन्धः ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रादि शब्दानां यागनामताधिकरणम् ॥ ३ ॥

तत्प्रख्यंचान्यशास्त्रम् ॥ ४ ॥

अग्निहोत्रं जुहोति " तै० सं० १।५।९।१ इत्यत्राग्नि रूपगुण विधिर्नामधेयं वेति संशये । अत्र वाक्य भेदा भावा-

---

समानाधिकरण उक्त लक्षणा के विना ही होसक्ता है, यह भाव है ॥२॥ चित्रादि शब्दों का याग नामता का अधिकरण द्वितीय है। चित्रयायजेत पशुकामः ॥ इसवा क्य में चित्रापद को गुण में रूढत्व होनेसे नामत्व का विधान नहीं हो सक्ता इसलिये यजेत पद से अग्नी षोमीय पशु यागका अनुवाद करके तदुप योगी पशु विशेष में चित्रता तथा स्त्री त्वरूप दो गुणों का विधान है इस पूर्व पक्ष के होने पर सिद्धान्त को कहते हैं। यस्मिन् इत्यादि से। (यस्मिन्) चित्रयायजेत " इस वाक्य में रूढि होने से चित्रत्व स्त्रीत्व रूप अनेक गुणों का विधान प्रतीत होता है तो भी वह गुण विधान नहीं हो सक्ता, क्योंकि वाक्य भेद का प्रसङ्ग हो जायगा इस हेतु का सूत्र में पूर्ण करना चाहिये। चित्रत्व रूप गुण का विधान अङ्गीकार न होने पर चित्रापद की क्या गति इस पर कहते हैं। (प्रधानतः) यज

द्गुण विधिरिति बहिः पूर्व पक्षे सिद्धान्तमाह । तदिति। तस्यगुणस्य श्रूयमाणस्याग्न्यादेः प्रख्यं प्रापक मन्य शास्त्र मग्नि ज्योंति ज्योंति रग्निः स्वाहा इति सायं जुहोति " तै० ब्राह्म २ । १ । २ सूर्य्यो ज्योति ज्योंतिः सूर्यः स्वाहेतिप्रातः तै० ब्रा० २ । १ । २ मन्त्र लिङ्गादि यत्र तदपि कर्म नामधेयम् । एवमेवाघार माघारयति तै० ब्रा० ३ । ३ । ७ पञ्चदशान्याज्यानि " ता० ब्रा० १९ । ११ । २ सप्त दश नि पृष्ठानि " ता० ब्रा० १९ । ११ । २ इत्यत्राघाराज्य पृष्ठ

धात्वर्थ याग के साथ नाम होकर (अभि संबन्धः) सम्बन्ध होना चाहिये ॥ ३॥ आग्निहोत्रादि पदों का याग नाम तका अधि करण तृतीय है । अग्नि होत्रं जुहोति " इस वाक्य में अग्निरूप गुण को किंवा नाम धेयकी विधि है इस संशय के होने पर । इसमें वाक्य भेद का अभाव होने से गुण विधि है इस प्रकार बाहर से पूर्व पक्ष होने पर सिद्धन्त को कहते हैं । तदिति। (तत्) श्रूयमाण अग्नि आदि गुणका (प्रख्यं) प्रापक (अन्य शास्त्रं) "अग्नि जौंतिः" मन्त्र वाक्य तथालिङ्गादि जिस वाक्य में विद्यमान हैं उस वाक्य में भी होम रूप कर्म के नाम धेय की विधि है गुणकी विधि नहीं क्योंकि गुण प्राप्त हैं । जैसे इस वाक्य में अग्निहोत्र कर्म का नाम है गुण का विधान नहीं वैसाहि " अघारमाघारयति " इत्यादि में आघार आदि भी कर्म का नाम जानना चाहिये इसी अर्थ को भट्टपाद ने भी कहा है । विधान करने को इष्ट गुण का प्रापक यहाँ अन्यशास्त्र

पदानि कर्मनाम धेयानि तदुक्तं भट्टपादैः । विधित्सित गुण-प्रापि शास्त्र मन्यद्यत स्त्विह । तस्मात्तत प्रापणं व्यर्थ मिति नामत्वमिष्यतामिति ॥ ४ ॥

श्येनादि शब्दानां योगनाम ताधिकरणम् ॥ ४ ॥

तद् व्यपदे शंच ॥ ५ ॥

श्येनेनाभिचरन्यजेत । संन्दं शेनाभिचरन्यजेत ॥ गवा अ भि चर्य्यमाणोयजेत । इत्यत्र श्येनादिर्गुणोवा कर्म नामवेति विशये श्येन शब्दस्य पक्षिणि रूढत्वाद्गुण विधि रिति बहिः पूर्व पक्षे सिद्धान्त माह । तदिति । तस्य गुणस्य

है इसलिये उसका विधान व्यर्थ है अतः नामत्व अङ्गीकार करना चाहिये ॥ ४ ॥ श्येनेना भि चरन्यजेत इस वाक्य में श्येन पद गुण वोधक किंवा कर्म का नाम है इस संशय के होने पर श्येन पद पक्षी में रूढ है इसलिये गुण का वोधक है ऐसा बाहर से पूर्व पक्ष होने पर सिद्धान्त को कहते हैं । तदिति । उत श्येन रूप गुण काव्यपदेश सादृश्य अर्थात् उपमान उपमेय भाव जिस कर्म में हो उस कर्म का नाम तद् व्यपदेश है वह कर्म भी श्येन नामवाला है । यह भाव है कि " यथा श्येनो० " जैसे श्येन संज्ञक पक्षी आकाश में उड़कर भूमि में विद्यमान पदार्थ को देखकर सहसा झपटकर पकड़ लेता है वैसा ही यह श्येनाख्य कर्म भ्रातृव्य अर्थात् शत्रु को सहसा नियत करके ग्रहण कर लेता है इस अर्थवाद

श्येनस्य व्यपदेशःसादृश्यं यस्मिन् कर्मणि तत्तद् व्यपदेशं तदपि नामस्यात् न गुणविधिः अयं भावः। यथाश्येनो निपत्यादत एव मयं निपत्या दत्त इति निपत्यादानेन श्येनसा दृश्यं प्रतीयते। न हि श्येन गुणविधौ स्वस्मिन् स्वसादृश्य स्तुतिः सम्भवत्यतः श्येन सदृशमिति गौण वृत्त्या कर्मनाम धेयम् ॥ ५ ॥

वाजपेयादि शब्दानांयागनामताधिकरणम् ॥ ५ ॥

नामधेये गुणश्रुतेःस्याद्विधान मितिचेत् ॥ ६ ॥

पक्षी सादृश्य प्रतीत होता है। और श्येन रूप गुण विधि मानने में अपने में अपने सादृश्य से स्तुति संभव नहीं इस लिये श्येन सदृश कर्म विधायक "श्येने-नाभिचरन्यजेत" इस वाक्यस्थ श्येन पद गुणयोग से कर्म का नाम है ॥५॥ वाजपेय नामक सोमयाग से स्वाराज्य रूप फल को करे इस वाक्य में पान करने योग्य अन्न का द्रवी भूत रस का नाम वाजपेय है, इस व्युत्पत्ति से वाजपेय पदार्थ यवागू रूप गुण प्रतीत होता है उसकी विधि है किंवा नाम धेय है इस संशय के होने पर पूर्व पक्ष का कथन करते हैं। नाम इत्यादि से। (नाम धेय) वाजपेय में अर्थात् नामत्व रूप से संभावित वाजपेय में उक्त व्युत्पत्ति से यवागू रूप गुण का श्रवण पाये जाने से उसका (विधानं) वाजपेय शब्द से विधान (स्यात्) है (चेत्) यदि (इति) ऐसा कहा जाय तो ठीक नहीं इसका अगले सूत्र से सम्बन्ध है ॥ ६ ॥ अथ पूर्व पक्षका समाधान

" वाजपेयेन स्वाराज्य कामो यजेत " वाजपेयाख्येन सोम यागेन स्वाराज्य रूपं फलं भावयेत् इत्यत्र वाजस्यान्नस्यपेयंद्रवी भूतोरस इति व्युत्पत्या वाजपेय पदार्थो यवागू रूप गुणस्तस्य विधिर्नाम धेयंवेति संशये पूर्वपक्ष माह। नामेति। नामधेये वाजपेयं नामधेयत्वेन संभाविते उक्त व्युत्पत्या गुणस्य यवागू रूपस्य श्रवणात्तस्य विधान मिति चेत् ॥ ६ ॥

तुल्यत्वात्क्रिययोर्न ॥ ७ ॥

सिद्धान्त माह। तुल्येति। क्रिययोःदर्शपूर्ण मास वाजपेययोःतुल्यत्वाद् इति कर्तव्यतांशे तुल्यत्वापाद नात्।

करते हैं। तुल्येति। (क्रिययोः) दर्शपूर्ण मास तथा वाजपेय इन दोनों यागों के (तुल्यत्वाद्) इति कर्तव्य तांश में समानता की प्राप्ति होने से। यवागू को ओषधि द्रव्य से उत्पन्न होने से अर्थात् जैसे अन्नमय द्रव्य वाजपेय याग में गुण है इसी प्रकार दर्शपूर्ण मास में भी गुण है. और बलवान् द्रव्यरूप गुण सादृश्य से दर्शपूर्ण मास प्रकृति और वाजपेय उसका विकृति याग सिद्ध होता है. और ऐसा होने से "प्रकृति वत् विकृतिः कर्तव्या " प्रकृति यागकी न्याई विकृति याग होता है, दर्श पूर्ण मास के धर्मों का वाजपेय याग में अति देश प्राप्त होगा। और ऐसा मान सके नहीं, क्योंकि "अन्नदासोमे" अन्नदा अवसात् ऐसा वाजपेय याग होता है,

यवाग्वा ओषधि द्रव्य प्रभवत्वे द्रव्य सादृश्येन बलवता दर्श पूर्णमास धर्मातिदेशापत्तिः । न चेष्टापत्तिः । सप्तदशोपसन्को वाजपेय इति सौमिक धर्म श्रवणविरोधात् । तस्मात् गुण विधिर्न ॥ ७ ॥

एक शब्दे परार्थवत् ॥ ८ ॥

उक्तर्थे हेत्वन्तर माह । एकेति । (एकशब्दे) शब्दनं शब्दः । भावे घञ् । एकः शब्द उच्चारणं यस्य यजेः स एक शब्दः तस्मिन्नेक शब्दे । षष्ठ्यर्थे सप्तमी । तथाच एकवार मुच्चारितस्य यजधातोरर्थे युगपत्कर्मत्व करणत्वान्वये परोयवागू रूपोयोऽर्थः तद्विधान वद्विधानाश्रयोयागःतदर्थ

इस वाक्य से वाजपेय याग मे सौमिक धर्म उपसत् का श्रवण अनुपपन्न हो जाता है क्योंकि दर्शपूर्ण मासयाग में उपसत् नहीं है । इसलिये वाजपेयेन यह गुण विधि नहीं किन्तु ज्योतिष्ठोम याग का विकृत रूप याग विशेष है ॥ ७ ॥ उक्त अर्थ में और हेतु कहते हैं । एकेति । (एक शब्दे) शब्द नाम यहाँ उच्चारण का है । बहुव्रीहि समास होने से यज धातु का नाम एक शब्द है । षष्ठ्यर्थ में सप्तमी है । तथाच एकंवार उच्चारित यज धातु के अर्थ यागमें एक कालाव च्छेद से कर्मत्व करणत्व के संबन्ध बोध होने पर धात्वर्थ भिन्न यवागू रूप जो अर्थ हैं उसका विधान वत् है अर्थात् विधिका आश्रय जो याग है वह पराथ विधि के लिये अनुवाद का आश्रय भी हो जायगा

नुवादाश्रयोऽपि स्यात् । कस्यचिद् विधि समीपे पाठा भावेन धात्वर्थानुवादा संभवाद्यथा स्वार्थ विधान वा न्यागः तथा परस्य गुणस्य विद्यर्थ मनु वाद्य मपीति विरुद्ध यो विधेयत्वानु वाद्यत्वयोरेकस्मिन् काले समावेशापत्तिः तस्मात् कर्म नाम धेयमेववाजपेय शब्दो नतु गुण विधि रिति भावः ॥ ८ ॥

आग्नेयादि शब्दानाम नामत्वम् । अधि० ॥ ६ ॥

तद्गुणास्तु विधियेरन्नवि भागाद्विधानार्थे न चेद न्ये-

किसी विधि के समीप में " वाजपेयेन " वाक्य के पाठ का अभाव होने से धात्वर्थ याग का अनुवाद होना असंभव है इसलिये जैसे स्वार्थ विधिका आश्रय स्वार्थ रूप याग है वैसाही (परस्य) यवागू रूप गुणविधि के लिये अनुवाद्य भी याग होगा तथाच विरूद्ध विधेयत्व तथा अनुवाद्यत्व का एक समय में ही समावेश की आपत्ति हो जायगी इस कारण वाज पेय शब्द कर्म का नाम है गुणविधि नहीं यह भाव है ॥ ८ ॥ आग्नेयादि शब्दों को अनामत्व सिद्ध करते हैं छठे अधिकरण से ॥ यदाग्नेयो० ॥ अग्नीषोमी यादि याग दर्श से च्युत होता है । ऐन्द्रादि याग पूर्ण मास से च्युत होता है । आग्नेय याग तो दोनों से च्युत नहीं होता इसलिये यह याग अच्युत है । तथाच अग्नि है देवता जिसका पुरोडाश द्रव्य है जिसका ऐसे याग से इष्ट को संपादन करे यह वाक्य का अर्थ है । इस स्थल में वाक्य भेद के भय के कारण आग्नेयादि शब्द से गुण

न शिष्टाः ॥ ९ ॥

यदाग्ने योऽष्टा कपालोऽमावास्यायांच पौर्णमास्यांचा च्युतो भवति तै० सं० २।६।३।३ अग्निर्देवता अस्ये त्याग्नेयः; अष्टासु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः अष्टा कपालः । सचाऽय मग्निर्देवताक पुरोडाश द्रव्यको यागः दर्शात पूर्ण मासाच्च न च्यवःतइत्यच्युतः । अग्नीषोमीयादि यागोदर्शाच्चवते, ऐन्द्रा-दिः पूर्ण मासाच्च्यवते । आग्नेय यागस्तुनोभजस्माच्च्यवत इत्यर्थः । तथाचाऽग्निर्देवताक पुरोडाश द्रव्यक यागे नष्टं भावयेदिति वाक्यार्थः । इत्यत्र वाक्य भेदभियाऽऽग्नेयादि-

---

विधि नहीं किंतु कर्म का नाम है ऐसा बाहर से पूर्व पक्ष होने पर सिद्धान्त को कहते हैं । तद्गुणाइति । आग्ने यादि शब्द कर्म और देवता द्रव्य अष्टा कपाल रूप गुणका विधान करते हैं । (विधानार्थे) विधीयमान अर्थ याग और उक्त गुणों में (अविभागात्) क्रिया का ही विधान है वा गुणही का विधान है इस नियम का कोई नियामक नहीं । (अन्यन) किसी अन्य वाक्य से (शिष्टाः) विहित नहीं । इसलिये सब अपूर्व हैं अतः नियम का संभव है । और वाक्य भेद भी नहीं हो सक्ता, क्योंकि गुण विशिष्ट क्रिया का विधान संभव है यह भाव है ॥ ९ ॥ अब बर्हि आदि शब्दों को जाति वाचकता अधिकरण सप्तम है । दर्श पूर्ण मास के प्रकरण में पठित बर्हिको काटे, घृत को पिघलाये इन वाक्यों में बर्हि तथा आज्य शब्द के प्रवृत्ति का निमित्त विहित संस्कार है रूप

शब्देन न गुणविधिः किन्तु कर्म नामेति बर्हिः पूर्व पक्षे सिद्धान्तमाह । तद्गुणाइति । तच्च कर्मच देवता द्रव्याष्टाक पालरूपागुणाश्च विधीयेरन् विधानार्थे विधीय मानेऽर्थे यागे उक्तगुणेषुचाविभागात् क्रियैवविधेया गुणा एव विधेया इति नियामका भावात् । अन्येन अन्य वाक्येन शिष्टा विहिता नचेत् । सर्वेऽप्यपूर्वा अतोनि यमासंभवः । नच वाक्य भेदः । गुणविशिष्ठ क्रियाविधि संभवादितिभावः ॥ ९ ॥

बर्हि रादि शब्दानां जाति वाचिताऽधिकरणम् ॥ ७ ॥

बर्हि राज्ययोरसंस्कारे शब्दलाभादतच्छब्दःस्यात् ॥१०॥

आहवनीयाग्नि के समान अर्थात् जैसे यूप तथा आहवनीय शब्द मंत्रों से संस्कृत स्तम्भ विशेष और अग्नि विशेष का वाचक है वैसाही बर्हि शब्द मन्त्रो से संस्कृत तृणाविशेष और आज्य शब्द मन्त्रो से संस्कृत घृत विशेषका वाचक है ऐसा बाहर से पूर्व पक्ष होने पर सिद्धान्त को कहते हैं । बर्हिरिति । बर्हि और आज्य शब्द का (असंस्कारे) संस्कार रहित केवल बर्हि और आज्य में भी (शब्दला भात्) शब्द का प्रयोग पाये जाने से (अतच्छब्दः) वह संस्कृत कुश तथा संस्कृत घृतके वाचक नहीं किन्तु बर्हिमात्र और आज्यमात्र के वाचक हैं संस्कार रूप निमित्त से भिन्न जातिवाचक हैं यह भाव है ॥ १० ॥ प्रोक्षणी आदि शब्द यौगिक हैं इसके सिद्धिका अधिकरण अष्टम है ॥ दर्श पूर्ण मास के प्रकरण में पठित प्रोक्षणी रासादय हैं अर्थात् यागीय हविः पात्र को शुद्ध करने

दर्शपूर्णमासयोःश्रूयते—बर्हिर्लुनाति "तै० ब्रा० ३ । २ । ४ आज्यं विलापयति" आप० श्रौ० २ । ६ । १ इत्यत्र बर्हि राज्य शब्द प्रवृत्ति निमित्तं विहित संस्कारःयूपाहवनीय वदिति बर्हिः पूर्व पक्षे सिद्धान्तमाह । बर्हिरिति । बर्हि राज्य शब्दयोः असंस्कारे संस्कार शून्येऽपि शब्द लाभाच् शब्द प्रयोगादतच्छब्दः । संस्कार निमित्ताभिन्नः जाति वाचक इति भावः ॥ १० ॥

प्रोक्षण्यादि शब्दानां यौगिकताधिकरणम् ॥ ८ ॥

प्रोक्षणीष्वर्थ संयोगात् ॥ ११ ॥

के लियें अपको आहवनीय अग्नि के उत्तर देश में स्थापन करो इस वाक्य में तो प्रोक्षणी शब्द भी जाति वाचक हो इस पूर्व पक्ष के होने पर सिद्धान्त को कहते हैं । प्रोक्षति । (प्रोक्षणीषु) प्रोक्षण के साधन जलों में प्रोक्षणी शब्द का प्रयोग जानना चाहिये क्योंकि (अर्थ संयोगात्) अर्थनाम अवयव अर्थ उसके साथ सम्बन्ध होने से प्रोक्षणी शब्द का अर्थ जल है नरूढिः-जल मात्र का वाचक नहीं क्योंकि उदक जातिमें प्रोक्षणी शब्द का प्रयोग वृद्धों के व्यवहार में नहीं देखा जाता । और घृत क्षीर आदिओं का भी "प्रोक्षणी रासादय" इसं वाक्य में प्रतीति की शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि स्त्रीलिङ्ग तथा बहुवचन के पाये जाने से "आपो वैर क्षोघ्नीः" इस वाक्य शेष में गृहीत जल ही विशेष्य रूपसे उपस्थित है । उन्हीं से रहित प्रातिपदिक प्रोक्षण शब्द का

दर्श पूर्णमासयोः श्रूयते प्रोक्षणी रासादय " तै० ब्रा० ३।२।७।१४ हे अग्नीत् यागीय पात्र हविः प्रोक्षण क्रियार्था अपः आहवनीयस्योत्तरदेशेस्थापयेति वाक्ये प्रोक्षणी शब्दोऽपि तर्हि जातिवाचकः स्यादिति पूर्व पक्षे सिद्धान्तमाह। प्रोक्षेति। प्रोक्षण साधन जलेषु प्रोक्षणी शब्दस्य प्रयोगो ज्ञातव्यः, कुत अर्थ संयोगात् अर्थः योगार्थःतेन संयोगान्न रूढिः उदक जातौ प्रोक्षणी शब्दस्य वृद्ध व्यवहारा दर्शनात्। नचघृत क्षीरादेरपि प्रोक्षणी रासादय इत्यत्र प्रतीतिः शङ्क्या बहुवचनाभ्यास् " आपो वैरक्षोघ्नीः, इति वाक्य शेषोपात्ता

सेचन के साधन द्रव द्रव्य सामान्य अर्थ होता ही है यह भाव है ॥ ११ ॥ निर्मन्थ्ये नेष्ठ का पयन्ति इस वाक्य गत निर्मन्थ्य शब्द में भी प्रोक्षणी शब्द का धर्म अवयवार्थ का अति देश करते हैं । तथा इत्यादि से। जैसे प्रोक्षणीं रासादय " में प्रोक्षणी शब्द अवयवार्थक है। वैसाही (निर्मन्थ्ये) निर्मन्थ्यं नेष्ठकाः पचन्ति ॥ में भी निर्मन्थ्य शब्द भी अवयवार्थक है ॥ १२ ॥ आग्नेयः इत्यादि वाक्य से द्रव्य तथा देवता के सहित अष्टयागों को विधान करके उसके ही समीप में "वैश्व देवेनयजेत " यह वाक्य पढा है। इस वाक्य में " वैश्वदेवेन" गुण विधि है किंवा नाम विधि है इस संशय के होने पर पूर्व पक्ष को कहते हैं। वैश्वदेव इति। (वैश्वदेव) " वैश्वदेवेनय जेत " इस वाक्य में गुण विधायकत्वात् " इस पद का शेष करना। देवता रूप किंवा द्रव्यरूप गुण का विधायकत्व होने

नामपामेव विशेष्यत्वे नोपस्थितेः । तद्रहित प्राति पदिक प्रोक्षण शब्दस्य सेचन साधनं द्रव द्रव्य सामान्य मर्थोभव स्येवेति भावः ॥ ११ ॥

निर्मन्थ्य शब्दस्य यौगिकताऽधिकरणम् ॥ ९ ॥

तथानिर्मन्थ्ये ॥ २ ॥

निर्मन्थ्ये नेष्ठकाःपचन्ति " इति वाक्यगत निर्मन्थ्य शब्देऽपि प्रोक्षणी शब्द धर्म योग मतिदिशति । तथेति । यथा " प्रोक्षणीरासादय " इन्यत्र प्रोक्षणी शब्दो यौगिकः,

---

से " आग्नेयम्० " इत्यादि वाक्य विहित देवता तथा द्रव्य के साथ उन गुणों का विकल्प होगा (चेत्) यदि (इति) ऐसा कहो तो ठीक नहीं इसका अगले सूत्र से सम्बन्ध है ॥ १३ ॥ सिद्धान्त को कहते हैं । नेति । " वैश्वदेवेन " में गुण विधिको मानकर अग्नि आदिओं के साथ उस गुण का विकल्प है यह जो कहा गया है वह ठीक नहीं । क्योंकि (प्रकरणात्) समीप पाठ से । बलवत इसपद अध्याहार करना चाहिये । (प्रत्यक्ष विधानात्) उत्पति विधि वाक्य में श्रुतत्व होने से तथाच समीप पाठलभ्य विश्वदेव लक्षण गुणकी अपेक्षा उत्पत्ति विधि वाक्यमें श्रुत होनेसे अग्नि आदि गुणों को बलवत्व होने से । उत्पत्ति वाक्य में उपदि ष्ठअग्नि आदि गुणों का उत्पन्न शिष्ट गुण से पक्ष में बाध मानकर विकल्प नहीं हो सक्ता यह भाव है । ननु, देवताका बाध मत हो परन्तु पुरोडाशादि द्रव्यका बाध होकर विकल्प होना

तथा (निर्मन्थ्ये) निर्मन्थ्ये नेष्ठकाः पचन्ति इत्यत्रापि निर्मन्थ्य शब्दोऽयौगिकः ॥ १२ ॥

वैश्वदेवादि शब्दानां नामधेय ताधिकरणम् ॥ १० ॥

वैश्वदेवे विकल्प इतिचेत् ॥ १३ ॥

आग्नेयमष्टा कपालं निर्वपति सौम्यं चरुं सावित्रं द्वादश कपाल मिति वाक्येन द्रव्य देवता विशिष्टानष्टौ यागान्वि धाय तस्यैव समीपे वैश्वदेवेन यजेतेति श्रुतम् । तत्र वैश्वदेव इति गुणविधिर्नाम धेयं वेति संशये पूर्वपक्षमाह। वैश्वदेव इति। वैश्वदेवे वैश्वदेव शब्दे गुणविधायकत्वादिति शेष देवता रूपस्य द्रव्यरूपस्य वागुणस्य विधायकत्वादाग्नेयमष्ठाकपालं निर्व· पतीति वाक्य विहित देवतया द्रव्येण वाविकल्पः ॥ १३ ॥

न प्रकरणात्प्रत्यक्ष विधानाच्च नहि प्रकरणं द्रव्यस्य ॥१४॥

सिद्धान्तमाह । नेति । "वैश्वदेवेन" इत्यत्र गुणविधि मङ्गी कृत्याग्न्यादि भिस्तस्य गुणस्य विकल्प इति यदुक्तं तन्न । कुतः (प्रकरणात्) समीप पाठात् । बलवत इति शेषः (प्रत्यक्ष विधानाद्) उत्पत्ति विधि श्रुतत्वात् । तथाच । समीप पाठलभ्य विश्वदेव लक्षण गुणापेक्षया उत्पत्ति विधि श्रुतत्वादग्न्यादेः बलवत्वात् । उत्पत्ति शिष्ठ गुणस्याग्न्यादेः,

---

चाहिये इस शंका के होने पर कहते हैं। नहीति। (प्रकरणं) समीप पाठ मात्र से प्राप्त देवता वाद्रव्य रूप गुण (द्रव्यस्य)

उत्पन्न शिष्ठ गुणेन पक्षेऽपि बाधोन संभवतीति भावः। ननु देवता बाधो माभवतु पक्षे द्रव्यं पुरोडाशादि बाध्यता मत्राह। नहीति। प्रकरणं समीप पाठमात्रं द्रव्यस्य उत्पत्ति शिष्ठ द्रव्यस्य न बाधकम्। तस्मादगत्या नामधेयमष्ठानां यागानां समुदायस्य ॥ १४ ॥

मिथश्चानर्थ संबन्धः ॥ १५ ॥

ननु वैश्वदेव शब्दे नाष्टौ यागान् अनूद्य तदुद्देशेन यागावृत्त्या आवृत्त यागे विश्वदेव गुणविधिश्चास्तां प्रथममग्न्याद्युद्देशेन द्वितीयवारं विश्वदेव देवताक आस्ता मत आह। मिथश्चेति। वाक्यावृत्तिमन्तरेणेति शेषः। वैश्वदेव शब्दस्यावृत्तिं

उत्पत्ति वाक्य में उपदिष्ट द्रव्य का बाधक नहीं हो सक्ता। इसलिये अगत्या "वैश्वदेवेनयजेत" यह वाक्य यजेत पद पूर्व विहित आठ यागों के समुदायका अनुवाद करके उनके नाम का विधान करता है ॥ १४ ॥ ननु, वैश्वदेव शब्द से आठ यागों का अनुवाद करके विश्वदेव के उद्देशसे यागकी आवृत्ति करके आवृत्त यागमें विश्वदेव रूप गुणका विधान हो सक्ता है अर्थात् प्रथम वार अग्नि आदि के उद्देश्यसे याग हो द्वितीय वार विश्वदेवताक याग हो इस शंकापर कहते हैं। मिथश्चेति। वाक्यावृत्ति मन्तरेण इस पदका शेष करना। वैश्वदेव शब्दके आवृत्ति के विना (मिथः) याग तथा देवता इन दोनोंका पर-

विना मिथः याग देवतयोः परस्पर मुद्देश्य विधेय भावाख्य संबन्धः अनर्थः कर्तु मशक्यः ॥ १५ ॥

परार्थ त्वाद्गुणानाम् ॥ १६ ॥

कर्मा वृत्ति र्नेत्यत्र हेत्वन्तरमाह । परेति । गुणानांदेवतादि गुणानां परार्थत्वात् अप्रधानत्वात् । नह्यप्रधान गुणानुसारेण प्रधानावृत्तिः संभवतीति भावः ॥ १६ ॥

वैश्वानरेऽष्टत्वाद्यर्थवादताधिकरणम् ॥ ११ ॥

पूर्ववन्तोऽविधानार्थास्तत्सामर्थ्यं समाम्नाये ॥ १७ ॥

स्पर उद्देश विधेय भाव नामक सम्बन्ध (अनर्थः) करनेको अशक्य है । और सम्बन्ध न होनेसे गुण विधि मानना व्यर्थ है इस लिये " वैश्वदेवनयजत " यह गुणविधि नहीं ' किंतु पूर्वोक्त आग्नेयादि आठयागोंके समुदायकी नामविधि है ॥१५॥ कर्मकी आवृत्ति नहीं होती इसमें और हेतु देते हैं । पर इत्यादिस । (गुणानां) देवतादि गुणोंको (परार्थत्वात्) अप्रधानत्व होनेसे । अप्रधान गुणके अनुसार प्रधानकी आवृत्ति संभव नहीं, इसलिये नामविधि ही समीचीन है गुणविधि नहीं यह भाव है ॥१६॥ अब वैश्वानर इष्टिके प्रकरणमें पठित अष्टाकपालादि शब्दोंको अर्थ वाद सिद्ध करनेके लिये एकादश अधिकरण है । काम्येष्टि काण्डमें पठित पुत्रके उत्पन्न होनेपर वैश्वानरके उद्देशसे द्वादशकपालका निर्वाप-प्रदान करें । जो अष्टाकपालका प्रदान करता है वह " गायत्री " से पुत्रको

काम्येष्ठि काण्डे श्रूयते—वैश्वानरं द्वादश कपालं निर्वपेत् पुत्रे जाते, यदष्ठा कपालो भवति गायत्रि यै वैनं ब्रह्म वर्चसेन पुनाति, यन्नव कपालस्त्रिवृतैवा ऽस्मिन् तेजोदधाति, यद्दश कपालो विराजैवा ऽस्मिन्नन्नाद्यं ददाति, यदेकादश कपालस्त्रिष्टुभैवा ऽस्मिन्निन्द्रियं दधाति यद् द्वादश कपालो जगत्यैवास्मिन् पशून् दधाति, यस्मिञ्जात एतामिष्ठिनिर्वपति पूतः । तै० सं० २ । २ । ५ । ३ एव तेजस्व्यन्नाद

पवित्र करता है, जो नवकपालका करता है, वह यज्ञमान स्तोत्र के द्वारा उसमें तेजका आधान करता है । जो दशकपाल का करता है वह विराटसे उसको अन्नाद्य बनाता है, जो एकादश कपालका करता है वह जगती से उसको पशुमान् करता है, जिसके उत्पन्न होने पर यह याग होता है, वह पवित्र, तेजस्वी अन्नाद, सर्व इन्द्रिय संयुक्त तथा पशुमान् होता है । इत्यादि वाक्य इस अधिकरणका विषय है । अष्टाकपालादि शब्द गुण विधिरूप है किंवा वैश्वानरेष्टि विधायक वाक्यमें श्रुयमाण द्वादशकपाल की स्तुति करने वाले अर्थवाद हैं । इस संशयके होनेपर पूर्व पक्षको कहते हैं । पूर्ववन्त इति वैश्वदेवेन यजेत ..में अग्नि आदि गुण. (पूर्ववन्तः) उत्पत्ति वाक्यसे प्रथम प्राप्त हैं इस लिए " वैश्वदेवेन " इस वाक्य गतगुण विधानार्थ न हों । परन्तु (समाम्नाये) अष्टाकपाल नवकपाल आदि प्रकृत वाक्योंमें (तत्सामर्थ्यं) अष्टात्वादि गुणोंके विधानकी सामर्थ्य है । क्यों कि प्रथम अप्राप्त हैं । जैसे द्वादशकपाल ...

श्रयानि पशुमान् भवति तै० सं० २।२।५।४। अष्टाकपालादि
(श्रा गुण विधिरूपा अर्थ वादावेति संशये पूर्व पक्ष माह।
(र्वन्त इति। वैश्वदेवेन यजेतेत्यत्र गुणे अग्न्या दयः पूर्ववन्तः
त्पत्ति वाक्येन प्रथम प्राप्ता इति वैश्वदेवेनेति वाक्यगत
(णा अविधानार्थाः सन्तुः। प्रकृते समाम्नाये अष्ठाकपाल
कपालादि वाक्ये तत्सामर्थ्यं विधि सामर्थ्यमस्ति। पूर्व
प्राप्तेः। अतो गुणविधायकमिति भावः ॥ १७ ॥

गुणस्यतु विधानार्थेऽतद्गुणाः प्रयोगेस्युरनर्थका नहिं तं प्रत्यर्थ वत्ताऽस्ति ॥ १८ ॥

चावल अथवा यवकी पिसानकी जो सुगन्धित द्रव्योंके संयो-
(गसे चतुष्कोण मोटी रोटी मिट्टीके ठीकरे पर पकाई जाती है
(उसको पुरोडाश कहते हैं) वैसेही अष्टा कपाल, नव कपाला
(दि भी पुरोडाशरूप द्रव्य विशेष के वाचक हैं, और द्वादशकपाल
(की न्याई उनके पवित्रतादि फल भी सुने जाते हैं, इसलिये
(यह गुण विधायक हैं अर्थ वाद नहीं यह भाव है ॥ १७ ॥
सिद्धान्त को कहते हैं। गुणस्येति। (गुणस्य) अष्टा कपालादि
वाक्य में अष्ठा कपालादि रूप गुणका विधान होने पर (अतद्
गुणाः) "वैश्वानरं" इस वाक्य विहित कर्ममें गुण नहीं होसक्ते.
अर्थात् अष्टा कपालादि रूप गुणका प्रकृत याग के साथ सम्बन्ध
नहीं होसक्ता, क्योंकि वह प्रथमही द्वादश कपाल रूप गुणसे अव-
रुद्ध होगया है यानी रुकाहुआ है। यागान्तर के विधान में अस-

सिद्धान्त माह। गुणस्येति। गुणस्याष्ठा कपालादि रूपस्य गुणस्य विधानार्थे वाक्ये सति अतद्गुणाः वैश्वानरं द्वादश कपालं निर्वपेदिति कर्मण्यगुणाः। तत्रद्वादश कपालावरोधात्। यागान्तर विधाने असमर्थाः सन्तः प्रयोगे अनुष्ठाने अनर्थका अनुपयुक्तास्युः। नहितं प्रति द्वादश कपाले कर्मणि अष्ठा कपालस्य अर्थवत्ताऽस्ति। अतोनिष्फलमेवस्यादिति भावः ॥ १८ ॥

द्वितीय व्याख्या ॥ १८ ॥

मर्थ होकर (प्रयोगे) अनुष्ठान में (अनर्थ काः) वे अनुपयुक्त हो जाते हैं। (नहितं प्रति) अर्थ वाद माने विना द्वादश कपाल वाले कर्म में अष्ठा कपाल का सम्बन्ध तथा (अर्थवत्ता) सफलता नहीं हो सक्ती। अतः निष्फल हो जायगा इसलिये " अष्ठा कपाल " इत्यादि द्वादश कपाल के स्तावक होने से अर्थवाद हैं, गुण विधि नहीं यह भाव है ॥ १८ ॥ द्वितिय व्याख्या का भाषा सिद्धान्त को कहते हैं। गुणस्येति। (गुणस्य) द्वादशकपाल रूप गुण का (विधानार्थे) विधायक "वैश्वानरं' इत्यादि वाक्य के विद्यमान होने पर (अतद्गुणाः) अष्ठा कपालादि रूप गुणों का विधान नहीं हो सक्ता, और (प्रयोगे) यागान्तर के विधान मे समर्थ न होने से (अनर्थकाः) वे निष्फल (स्युः) हो जाते हैं और (तंप्रति) अर्थवाद माने विना उनका प्रकृत याग के साथ सम्बन्ध नहीं हो सक्ता और सम्बन्ध न होने से (अर्थ वत्ता) सफलता (नहीं) नहीं हो

सिद्धान्त माह । गुणस्येति । गुणस्य द्वादश कपालरूप-
स्य गुणस्य विधानार्थे विधायके "वैश्वानरं" इत्यादि वाक्ये
विद्यमाने सति अतद्गुणाः अष्ठा कपालादि रूपाणां गुणानां
विधानं न संभवति प्रयोगे यागान्तरस्य विधानेऽसमर्थत्वा
दनर्थकाः स्युः तं प्रति–अर्थ वादाङ्गीकारं विना तेषां प्रकृत
यागेन सहसम्बन्धो न संभवति सम्बन्धा भावाच्चाऽर्थवत्तापि
स्यादतः अष्टाकपालादयःद्वादश कपालस्य स्तावकाः न गुण-
विधिः ॥ १८ ॥

तच्छेषो नोपपद्यते ॥ १९ ॥

ननुसिद्धान्ते वक्ष्यमाण द्वादश कपाल स्तुतिः अष्ठा
कपालादिभिःकथमपि न संभवतीत्याशङ्कते । तच्छेषेति ।
तच्छेषः द्वादश कपाल विधि शेषो नोप पद्यते द्वादशापेक्षया
अष्ठादि संख्यायाः न्यूनत्वात् ॥ १९ ॥

सक्ती इसलिये "अष्टा कपालः" इत्यादि द्वादश कपाल के
स्तावक होने से अर्थवाद हैं, गुणविधि नहीं ॥ १८ ॥ ननु,
सिद्धान्त में अष्टा कपालादि द्वारा आगे कथन की जानेवाली
द्वादश कपाल की स्तुति किसी भी प्रकार से संभव नहीं यह
आशंका करते हैं। तच्छेष इत्यादि से। (तच्छेषः) अष्टा कपाला
दि द्वादश कपाल के विधि का शेष अर्थात् स्तावक हैं, यह
(न) नहीं (उपपद्यते) बनसक्ता, क्योंकि अष्टत्वादि संख्याको
द्वादशत्व की अपेक्षा अल्पत्व है। अधिक से न्यून की स्तुति

अत्रि भागाद्विधानार्थे स्तुत्यर्थे नोप पद्ये रन् ॥ २० ॥

उक्त शङ्कां समाधत्ते । अत्रीति । विधानार्थे कपालगत द्वादश संख्यायामष्ठत्वादि संख्याया अत्रिभागान्नियतत्वादिति फलितोऽर्थः । द्वादश संख्याया अवयव रूपत्वादिति निष्कर्षः । द्वादश कपाल स्तुत्यर्थत्वेनाष्ठा कपालादि शब्दा उपपद्येरन् । अवयव स्तुति द्वारा अवयवि स्तुतिरिति भावः ॥२०॥

कारणं स्यादिति चेत् ॥ २१ ॥

होती है । न्यून से अधिक की नहीं यह भाव है ॥ १९ ॥ उक्त शंका का समाधान करते हैं । अत्रीति । विधीय मान कपाल गत द्वादश संख्या में अष्टत्वादि संख्या का (अत्रि भागात्) नियतत्व होने से अर्थात् अन्तर भाव होने से यह फलित अर्थ है । अष्टत्वादि संख्या को द्वादश सख्या का अवयव रूप त्व होने से यह निष्कर्ष है । द्वादश कपाल की स्तुति रूप अर्थ द्वारा अष्टाकपालादि शब्द (उपपद्येरन्) संगत हैं । यदङ्ग भूत द्वादश कपाल स्यावयवोऽष्टा कपालादि रप्येकैक फल साधनं तत्र सर्वावयवो पेत द्वादश कपालस्य सर्वफल प्रयोजकत्वेकः सन्देहः इति अवयव स्तुति द्वारा अवयविस्तुतिरिति भावः । जो याग का अङ्ग स्वरूप द्वादशकपाल का अवयव अष्टाकपाल दि भी एक एक फल के साधन हैं तो सर्व अवयवविशिष्ट द्वादश कपाल को सर्वफल के प्रयोजकत्व होने मे क्या संदेह है इस प्रकार अवयव की स्तुति द्वारा अवयवि द्वादशकपाल की स्तुति हैं यह भाव है । इसलिये अष्टाकपालादि अर्थ वाद ही है गुण विधि नहीं ॥२०॥

ननु गायत्र्यैवैनं ब्रह्मवर्चसेन पुनातीति श्रूयमाणफल साधनत्वेनाष्ठा कपालादि गुणविधिः किं नस्यादिति शङ्कते। कारणमिति। कारणं श्रूयमाण फल कारणं स्यादितिचेत् ॥२१॥

आनर्थक्यादकारणं कर्तुर्हि कारणानि गुणार्थे विधीयन्ते ॥ २२ ॥

पूर्वोक्तं गुणफल संबन्धं दूषयति । आनर्थक्यादिति । अकारणम् अष्टा कपालादि पूतत्वादि कारणं न। वाक्य भेदोप क्रमोपसंहार भङ्गादि दोषग्रस्त त्वेन गुण फल सम्बन्ध बोधासंभवेन वाक्यस्यानर्थक्यात् । गुणार्थे स्तुत्यर्थे विधीं-

---

ननु गायत्री से और ब्रह्मवर्च से पुत्र को पवित्र करता है "इस वाक्य से श्रूयमाणफल का साधनत्व रूप से अष्टा कपालादि गुणोंकी विधि क्यों नमानी जाय यह शङ्का करतेहैं। कारण मिति (कारणं) श्रुयमाण फलका कारण अष्टा कपालादि (स्यात्) है (चेत्) यदि (इति) ऐसा कहा जाय तो ठीक नहीं इसका अगले सूत्र से सम्बन्ध है ॥ २१ ॥ अब पूर्वोक्त गुणफल सम्बन्धकी आशङ्काको दूषित करते हैं। आनर्थक्यादिति(अकारणम्) अष्ठा कपालादि उक्त पवित्रता आदि फलके कारण नहीं क्यों कि यदि अष्ठा कपालादिका स्वतन्त्र फल माना जाय तो उपक्रम उपसंहार की एक वाक्यता का भङ्गतारूप वाक्य भेदादि दोषोंसे ग्रस्त होनेके कारण गुणफल सम्बन्धके बोधका असंभव होनेसे वाक्यको आनर्थक्य आता है। (गुणार्थे) स्तुति रूप अर्थ में (विधीयन्ते) अष्ठा कपालादि शब्दतात्पर्यके

यन्ते तात्पर्य विषयी क्रियन्ते। हि यस्माद्गुण फलानि कर्तुः- दृष्टानि गोदोहनादि जनितानि फलानि पश्वादीनि सूत्रे कर्तु- रित्यनन्तरं फलेष्विति पूरणीयम् । यागकर्तृ संबन्धि फल कारणानि गुणादीनि पूतत्वादि फलानि जातस्य शिशोःनतु कर्तु रित्यतोऽपि न गुण फल संबन्धः ॥ २२ ॥

यजमान पदस्य प्रस्तरादि स्तुत्यर्थताऽधिकरणम् ॥१२॥

तत्सिद्धिः ॥ २३ ॥

इतः पदं गौणवृत्ति प्रसरे निमित्तान्याह। तदित्यादिना। " यजमानः प्रस्तरः " तै० सं० २। ६। ५। इत्यत्र यज-

---

विषयवाले हैं। (हि) जिस कारण गो दोहनादिसे जन्य फल पशु आदि गो दोहन रूप गुणके फल हैं वे कर्ता सम्बन्धी देखे गये हैं। सूत्रमें 'कर्तुः' इस पदके अनन्तर 'फलेषु' इस पदका संपादन करना चाहिये। यहां फलके कारण अष्ठा कपालादि गुण हैं वे यागकर्ता सम्बन्धी हैं और पूतत्वादि फल हैं जात शिशु सम्बन्धी हैं इस कारज से भी गुणका फल के साथ सम्बन्ध नहीं है ॥ २२ ॥ यजमान शब्दको प्रस्तर आदिकी स्तु त्यर्थकताका अधिकरण बारहमा है ॥१२॥ इससे पर गौणवृत्तिके प्राप्तिमें निमित्तोंको कहते हैं। तदित्या- " यजमानः प्रस्तर " इत्यादि में यजमानका कार्य रूप परिधि का परिधान प्रस्तर करता है इस लिये उस प्रस्तरसे यजमान कार्यकी सिद्धी होती है। यथा सिंहोऽयं देवदत्तः इत्यादौ सिंह- गुण युक्तदेवदत्तस्य सिंह शब्दःस्तावकः तथा यजमानः प्रस्तरः

मान कार्यं परिधिं परि धानं प्रस्तरः करोतीति तस्मात् प्रस्तरा यजमान कार्य सिद्धिः ॥ २३ ॥

आग्ने यादि शब्दानां ब्राह्मणादि स्तुत्यर्थत्वम् अधि ॥१३॥ जातिः ॥ २४ ॥

प्रजापति रकामयत प्रजायेयेति स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत तमग्नि र्दैवताऽन्वसृज्यत गायत्री छन्दो रथन्तरं साम ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात्ते मुख्या तै० सं० ७।१।१ इति प्रजापति मुख प्रभ वत्वेनाग्नेर्ब्राह्मणस्य चैक जाति मत्वा दग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मण इति ब्राह्मण स्तुतिः ॥२४॥

इत्यादावपि यजमानस्य याग साधनतादि गुणयोगेन प्रस्तरादे र्यजमान शब्दः स्तावक। अत इदं वाक्यं न गुण विधिः किन्तु मर्थवादः इति भावः ॥ जैसा कि 'सिंहोदेव दत्तः' में सिंह गुणसे युक्तदेव दत्त का सिंह शब्द स्तावक है, वैसाही 'यजमानः प्रस्तरमें भी यजमान के यागसाधनतादि गुण योगसे प्रस्तरादिओंका यजमान शब्द स्तावक है। अतः यह वाक्य गुणविधि नहीं किन्तु अर्थवाद है यह भाव है ॥२३॥

प्रजापति रकामयत ॥ इति सृष्टि करनेकी इच्छा वाला प्रजापति उसके साधनत्व रूपसे अग्निष्टोमको करके उस सामर्थ्य से सत्य संकल्प होकर स्वकीय मुखसे त्रिवृत् आदि उत्पन्न हों ऐसा संकल्प करके वैसाही निर्माण करता हुआ प्रथम त्रिवृत् स्तोमको रचा तमनु–उसके पश्चात् देवतोंके

यूपादि शब्दानां यजमान स्तुत्यर्थत्वम् अधि० ॥१४॥

सारूप्यम् ॥ २५ ॥

आदित्यो यूपः "तै० ब्रा० २ । १ । ५ । २ । यजमानो यूपः" का० सं०२६।६ इत्यत्र यूपस्याष्ठा श्रीकरणे. तत्र घृते नाऽञ्जमाने तेजस्वित्वं संपद्यते । आदित्येऽपि तेजस्वित्वेन ऊर्ध्वमानत्वेनच सारूप्यात् आदित्य शब्देन यजमान शब्देनयूपस्तुतिः ॥ २२ ॥

अपशवादि शब्दानां गवादि स्तुत्यर्थत्वम् अधि० १५ ॥

प्रशंसा ॥ २६ ॥

मध्य अग्निको रचा उसके पश्चात् छन्दों के मध्य गायत्रीको रचा उसके बाद सामोंके मध्य रथन्तर को रचा उसके पश्चात् मनुष्योंके मध्य ब्राह्मणोंको निर्माण किया उसके बाद पशुओं के मध्य अजाको रचा जिस कारण ये मुखसे उत्पन्न हैं इसी कारण वे मुख्य हैं । प्रजापतिके मुखसे उत्पन्न होनेके कारण अग्नि और ब्राह्मण इन दोनोंको एकसे जन्मवत्ता है इस कारण "अग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मणः" इस वाक्य घटक अग्नि पद मुख प्रभवत्व रूपगुण योगसे ब्राह्मणकी स्तुति करता है, अतएव अग्नि आदि शब्द अर्थवाद हैं गुणविधि नहीं ॥ २४ ॥ आदित्यो यूपः " में यूपको अष्ठकोण करने पर और उस यूपमें घृतने अञ्जन करने पर तेजस्वित्व उत्पन्न हो गया । आदित्यमें भी तेजस्वित्व है अतः इस रूपसे और ऊर्ध्वमानत्व

अपशवोवा अन्ये गो अश्वेभ्यः तै० सं० ५।२।९।४ अयज्ञोवा एषयोऽसामा " तै० सं० १।५।७।१ असत्रंवा एतद्यदच्छन्दोमम् " तै० सं० ७।४।२।३ इति श्रूयते तत्र विधिरर्थवादोवेति संशये, अर्थवत्त्वाद्विधय इति पूर्वपक्षे सिद्धान्त माह । प्रशंसेति । यदि विधयो भवयुः, गोअश्वा एवपशवःस्युः सामवान् यज्ञः, छन्दोमवदेवसत्रम् । अन्येषां पशूनां यज्ञानां सत्राणां चोत्पत्तिरनर्थिका स्यात् । विध्य त्वंच नावकल्पेत । अतः अपशवोवा अन्येगोऽश्वेभ्यः "इत्यादिभिः वाक्यै रन्येषां पशूनां यज्ञानां सत्राणांचाऽपशु

रूपसे सा रूप्य होने के कारण आदित्य शब्द से तथा यज-मान शब्दसे यूपकी स्तुति की गई है ॥ २५ ॥ अपशुआदि शब्दोंको गो आदिओंकी स्तुत्यर्थता सिद्ध करने के लिये १५ अधिकरण की रचना करते हैं । अपशवो वा० इत्यादि वाक्य श्रुत हैं । यह विधिवाक्य हैं किंवा अर्थवाद हैं इन वाक्योंमें संशयके होने पर, विधिवाक्य हैं क्यों कि विधि मानने से येसब वाक्य सार्थक हो जाते हैं इस पूर्व पक्षके होनेपर सि-द्धांतको कहते हैं । प्रशंसेति । यदि ये वाक्य विधि माने जाय तो गो अश्वही पशु ठहरते हैं सामवाला कर्म यज्ञ ठहरता है और छन्दोमवाला कर्म सत्र ठहरता है इनों से भिन्न पशु यज्ञ तथा सत्र नहीं ठहर सके और अन्य पशु यज्ञ तथा सत्रों की उत्पत्ति व्यर्थ हो जायगी । अन्यविधि वाक्य भी व्यर्थ हो जायेंगे । अतः अपशवो वा० इत्यादि वाक्योंसे, अन्योंको अप-

त्वऽयज्ञत्वाऽसत्रत्व निन्दया गोरश्वस्य सामवतो यज्ञस्यच्छन्दो मत्वतः सत्रस्यच प्रशंसा ॥ २६ ॥

बाहुल्येन सृष्ठि व्यपदेशः अधि० ॥ १६ ॥

भूमा ॥ २७ ॥

सृष्ठी रुपदधाति तै० सं० ५।३।४।७ इत्यत्र सृष्टिलिङ्ग मन्त्रोपधेयादन्यत्रापि सृष्टिपद प्रयोगोगौण्या । तत्रनिमित्तं भूमा भूयस्त्वं सृष्ठिलिङ्क मन्त्राणां भूयस्त्वेन तन्मध्य वर्तिन्य सृष्टिलिङ्गेऽपि तथा प्रयोग इति भावः ॥ २७ ॥

भूमा ॥ २७ ॥

अग्निचयन प्रकरणे श्रूयते "सृष्ठी रुपदधाति" इति तत्रसृष्ठि शब्दवतां मन्त्राणामिष्ठका या उपधानेगुण

शुत्वादिसे निन्दा करके गो अश्वादिओंकी प्रशंसा है विधि नहीं ॥ २६ ॥ बहुलताके कारण सृष्टि शब्द वाले तथा असृष्ठि शब्दवाले सब मन्त्रोंका सृष्ठि पदसे व्यवहार होता है इसकी सिद्धिके लिये सोलह मा अधिकरण की रचना करते हैं। सृष्ठी रूपदधाति " इस स्थल में सृष्ठि लिङ्गक मन्त्रोंसे उपधान करने योग्य इष्ठकाओंसे (अन्यत्रापि) भिन्न असृष्ठि लिङ्गक मन्त्रोंसे उपधेय जो इष्ठका है उनमें भी सृष्ठिपदका प्रयोग गौणी वृत्तिसे है । उसमें प्रवृत्तिका निमित्त भूमा–भूयस्त्व है । सृष्ठि लिङ्गक मन्त्रोंको अधिक होनेके कारण उन्हीं के मध्यवर्ति असृष्ठिलिङ्गक मन्त्रोंमें भी वैसा ही प्रयोग

रूपेण विधानमुत तेषामनुवादेन सृष्टि, असृष्टि उभयविध मन्त्रै रिष्ठकाया उपधानस्य विधान मितिसंशयः। तत्राख्यातसंबन्धाद्वि ध्यन्तरैक वाक्यत्वाभावादर्थ वत्वाच्च विधिरिति पूर्व पक्षः। लिङ्गप्रकरणाभ्यामेव प्राप्तत्वान्न विधिर्मन्त्राणां सम्भवति। किन्तु मन्त्राणामनुवादेनेष्ट को पधान विधिरिति सिद्धान्तः। ननु, अग्निचयन प्रकरणे ये मन्त्राः पठिताः तेसर्वे न सृष्टि शब्दवन्तः, अतःसृष्टि शब्देनतेषां सर्वेषा मनुवादो नसंभवतीति चेन्न येषुमन्त्रेषु सृष्टि शब्दा भावःतेषु सृष्टि शब्दोगौणः। तत्र प्रवृत्ति निमित्तमाह। भूमेति। भूमा बाहुल्यं गौण्यावृत्त्या

होता है यह भाव है ॥ २७ ॥ अग्निचयनके प्रकरणमें पठित सृष्टी रूप दधाति। इत्यादि वाक्य हैं इनमें सृष्टि शब्द वाले मन्त्रोंका इष्ठकाके उपधानमें गुणरूपसे विधान है किंवा उनों-का अनुवाद करके सृष्टि तथा असृष्टि उभयविध मंन्त्रोंसे इष्ठ-काके उपधानका विधान है यह संशय होता है। तहां सृष्टि शब्दका उपदधाति रूप आख्यातान्तके साथ सम्बन्ध होनेसे विध्यन्तरके साथ एक वाक्यत्वका अभाव होनेसे और विधि माननेसे यह वाक्य सार्थक हो जाता है इस लिये मन्त्रोंकी विधि है ऐसा पूर्व पक्ष होता है। उपधानमें मन्त्रोंका सामर्थ्य रूप लिङ्ग होनेसे तथा अग्नि चयनकर्मके प्रकरणमें पठित होने से वे मन्त्र स्वयं प्राप्त हैं और प्राप्तका विधान होता नहीं इस लिये मन्त्रोंका विधान सम्भव नहीं। किन्तु मन्त्रोंका अनुवाद करके इष्ठकाके उपधानका विधान है यह सिद्धान्त है। ननु

निमित्तमित्यर्थः । यथा शूद्राणां सत्वेऽपि ब्राह्मणानामाधिक्या-द्ब्राह्मणानां ग्रामइत्युच्यते तथैवाऽग्निचयन प्रकरणे पठितानां मन्त्राणांमध्ये सृष्टि शब्दवतां मन्त्राणामाधिक्यात् सर्वेषां सृष्टि शब्देनानुवाद अतः सृष्ठीरुपदधातीति अनुवादो न-गुणविधिः ॥ २७ ॥

प्राग भृदादि शब्दानां स्तुत्यर्थत्वम् अधि० ॥ १७ ॥

लिङ्ग समवायात् ॥ २८ ॥

प्राणभृन उपदधातीत्यत्र प्राणलिङ्गक मन्त्र समीप पठिना नाम प्राणभृतामपि प्राणभृत्त्वं गौण्यावृत्त्या । प्रथमं प्राणलिङ्गक मन्त्र पाठात्तस्य प्राधान्यम् ॥ २८ ॥

अग्नि. चयन प्रकरणमें जो मन्त्र पढे गए हैं वे सब सृष्टिशब्द वाले नहीं, इस लिये सृष्टि शब्दसे उन सब मन्त्रोंका अनुवाद नहीं हो सक्ता यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं क्यों कि जिन मन्त्रों में सृष्टि शब्दका अभाव है उनोंमें सृष्टि शब्दका प्रयोग गौण हो सक्ता है । तहां प्रवृत्तिके निमित्तको कहते हैं । भूमेति भूमा गौणी वृत्तिसे सृष्टि शब्दके प्रवृत्तिका निमित्त बाहुल्य है यह अर्थ है । जैसे शूद्रोंके रहते हुए भी ब्राह्मणोंकी अधिकता से ब्राह्मणोंका ग्राम है ऐसा कहा जाता है वैसा ही अग्नि चयन प्रकरण में पठित संपूर्ण मन्त्रोंके मध्य सृष्टि शब्द वाले मन्त्रोंकी अधिकताके कारण उन सबका सृष्ठि शब्द से अनु-वाद है । इसलिये " सृष्ठी रुप दधाति " यह अनुवाद है गुणविधि नहीं ॥ २७ ॥ " प्राणभृत उपदधाति " तै० सं०

लिङ्गसमवायात् ॥ २८ ॥

चयन प्रकरणे " प्राणभृत उपदधातीति श्रूयते तत्र प्राण शब्दवतां मन्त्राणां मुपधाने गुणरूपेण विधानं किंवा गौण्या-वृत्त्या प्राणभृद प्राणभृदुभय विधमन्त्राणामनुवादेनेष्ठकोप-धानस्य विधानमिति संशयः, तत्राख्यात संबन्धाद्विध्यन्तरैक वाक्यत्वाभावादर्थवत्त्वाच्च विधिरिति पूर्वपक्षः । लिङ्ग प्रकरणाभ्यामेव प्राप्तत्वान्न विधिर्मन्त्राणां सम्भवति । किन्तु मन्त्राणामनुवादे नेष्ठकोपधान विधिरितिसिद्धान्तः । ननु चयन प्रकरणे ये मन्त्राः पठिताः ते सर्वे न प्राण शब्दवन्तः,

---

५।३।१।२ पृ० २९११ । इस स्थलमें प्राणलिङ्गक मन्त्रके समीप पठित अप्राण भृत् मन्त्रोंको भी प्राण भृत्त्व गौणी वृत्तिसे है । प्रथम प्राण लिङ्गक मन्त्र का पाठ होनेसे उसको प्राधान्य है ॥ २८ ॥ चयन प्रकरणमें " प्राणभृत उपदधाति " यह वाक्य पठित है तहां प्राण शब्द वाले मन्त्रोंका उपधानमें गुण रूपसे विधान है किंवा गौणी वृत्ति से प्राण भृत् तथा अप्राण भृत् उभयविध मंत्रोंका अनुवाद करके इष्टकाओंके उपधानका वि-धान है यह संशय होता है, तहां प्राण भृत् शब्दका उपदधाति रूप आख्यातान्त के साथ सम्बन्ध होने से और विध्यन्तर के साथ एक वाक्यता का अभाव होने से तथा विधि मानने से यह वाक्य सार्थकहो जाता है इसलिये मन्त्रों की विधि है यह पूर्व पक्ष होता है । उपधान में मन्त्रों का सामर्थ्य रूप लिङ्ग होने से तथा चयन कर्म के प्रकरण में पठित होनेसे वे

अतः प्राणभृच्छब्देन तेषां सर्वेषामनुवादो नसम्भवतीतिचेन्न येषु मन्त्रेषु प्राणशब्दाभावः तेषु प्राण भृच्छब्दो गौणः । तत्र प्राण शब्दवतां मन्त्राणामल्पत्वान्न भूम्ना प्राणभृच्छब्दस्य प्राण भृदप्राण भृत्सु गौणी वृत्तिर्युज्यत इत्यतो निमित्तान्तरमाह । लिङ्गेति । (लिङ्गं) प्राणप्रतिपादन सामर्थ्यम् । तस्य (समवायः) सम्बन्धमात्रं गौण्यावृत्त्या निमित्तमित्यर्थः । तत्र प्राण भृन्मन्त्र समुदाये प्राणप्रतिपादन सामर्थ्यं लिङ्ग-मस्ति प्राणभृदप्राणभृत्समुदायेऽपि वनैकदेशे पुष्पिते वनं पुष्पितमिति वत्तदस्ति । तादृश समुदायद्वारा प्राणभृत्स्व प्राण-

---

मन्त्र स्वयं प्राप्त है । और प्राप्त का विधान होता नहीं । इस लिये मन्त्रोंका विधान सम्भव नहीं । किंतु मन्त्रों का अनुवाद करके इष्टका के उपधान का विधान है यह सिद्धान्त है । ननु, चयन प्रकरण में जो मन्त्र पढ़े गए हैं वे सब प्राण शब्द वाले नहीं है. इसलिये प्राणभृत् शब्द से उन सब मन्त्रों का अनुवाद नहीं हो सक्ता यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं क्योंकि जिन मन्त्रों में प्राणभृत शब्द का अभाव है उनों में प्राण भृत् शब्द गौण है । तहां प्राण शब्द वाले मन्त्रों का अल्पत्व होनेसे भूयस्त्व गुण योगसे प्राणभृत् शब्दकी प्राणभृत् तथा अप्राणभृत् ओंमें गौणी वृत्ति युक्त नहीं हो सक्ती इसलिये अन्यनिमित्तको कहते हैं । लिङ्गेति । (लिङ्ग) प्राण प्रति पादनके सामर्थ्य का नाम लिङ्ग है उसका (समवायः) सम्बन्ध मात्र गौणी वृत्तिसे शब्द के प्रवृत्तिका निमित्त है । तहां प्राण

भृत्सुचमन्त्रेपुतद्द्वारा तदुपधेयेष्टकासु च तत्संबन्ध इति लिङ्ग समवाय मात्रेण सर्वत्र प्राणभृच्छब्द प्रवृत्तिः ॥ २८ ॥

वाक्यशेषेण संदिग्धार्थ निरूपणम् ॥ अधि० १८ ॥

संदिग्धेषु वाक्य शेषात् ॥ २९ ॥

" अक्ताः शर्करा उपदध्यात् " तै० ब्रा० ३।१२।५ शर्करा अक्ता उपदधाति तेजो घृतमितितैत्तिरीय ब्राह्मण पाठः। शर्कराः कंकड इति हिन्दी भाषायां प्रसिद्धाः। इय मत्र विषय शुद्धिः—यथाहि श्येनचित् सुवर्णचित् प्रभृतीनि आहवनीया-द्यग्न्याधार स्थण्डिल विशेष सम्पादकानि महाग्नि चयनानि

भृत् मन्त्र समुदाय में प्राण प्रतिपादन का सामर्थ्य लिङ्ग है। जैसे वनका एकदेश पुष्पित होनेपर वन पुष्पित है ऐसा व्यवहार होता है वैसाही प्राणभृत् तथा अप्राणभृत् समुदाय में भी प्राण प्रतिपादनका सामर्थ्यरूप लिङ्ग है ऐसा व्यवहार होसक्ता है। तादृश समुदायद्वारा प्राणभृत् और अप्राणभृत् मन्त्रों में और मन्त्रद्वारा उस मन्त्र से उपधेय इष्टका ओंमें उस लिङ्गका सम्बन्ध है इस प्रकार लिङ्ग समवाय मात्रसे सर्वत्र प्राणभृत् शब्दकी प्रवृत्ति है ॥ २८ ॥ " अक्ताः शर्करा उपदधाति " (शर्कराः) कंकड (इति) यह हिन्दी भाषामें प्रसिद्ध है। यहां यह विषय शुद्धि है—उसीको दिखाते हैं " श्येनचित् तथा सुवर्णचित् प्रभृति आहवनीय आदि अग्निका आधार स्थण्डिल विशेषका सम्पादक महा अग्निचयन बृहत् आकारवाली इष्टका ओंसे कर्तव्यरूप करके विहित हैं " इष्टकाभिरग्निंचिनुत "

इष्ठकाभिः कर्तव्य तयाविहितानि इष्ठकाभिरग्निं चिनुत " इति, तद्वत् सावित्रं नाचिकेतारूणकेतुक प्रभृतीनि क्षुद्र चयनानि अङ्गुलि पर्व परिमित सुवर्ण निर्मिताभिरिष्टकाभिः कर्तव्य तया विहितानि । दारिद्र्यादिनाहिरण्यालाभेतु तत्स्थाने शर्करा-विहिताः—अक्ताश्शर्करा उपदधातीति । ताश्च घृतेनसिक्त्वा उपधेया इति । अत्रयेन केनचिदञ्जनमुतघृते नैवेति संशये नियामक शास्त्राभावाद्येन केनाप्यञ्जनमिति बाहिः पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह । संदिग्धेष्विति । संदिग्धेषु संदेहविषयी भूतेषु विध्यर्थेषु सत्सुवाक्यशेषादर्थवादात्तेजो वैघृतं सतैजस मेवाग्निं

इति, वैसाही—सावित्र, नाचिकेत अरूण केतुक, " आदि क्षुद्र-चयन अङ्गुलिके पर्वसे परिमित सुवर्ण निर्मित इष्टकाओंसे कर्तव्यरूपसे विहित हैं । दरिद्रता आदि के कारण हिरण्य का लाभ न होनेपर तो उसके स्थानमें शर्करा विहित हैं—अक्ता-श्शर्करा उपदधाति " इस वाक्य से । उन्हीं को घृतसे सेचन करके उपधान करना चाहिये। अग्नि कुण्डमें उपधान के लिये शर्कराको जिस किसी से अञ्जन करना अर्थात् चोपडना, किंवा घृतसे ही इस संशयके होनेपर नियामक शास्त्रका अभाव होने से जिस किसी से भी अञ्जन करलेना चाहिये ऐसा बाहरसे पूर्वपक्ष होने पर सिद्धान्तको कहते हैं । संदिग्धेषु इत्यादि से। संदेह के विषय भूत विध्यर्थों के होने पर अर्थात् विधेय अर्थों मे सन्देह होनेपर (वाक्य शेषात्) अर्थवाद से निर्णय होता है तेजो वैघृतं सतैजसमेवाग्निं चिनुते इस अर्थवाद वाक्य से घृतकी स्तुति की गई

विनुत इत्यर्थ वादेन घृतस्तुत्याविधेयार्थोऽपिघृतमेवेतिसिध्यति। अर्थ वादेन विधेयार्थस्यैव स्तुतेरिति भावः ॥ २९ ॥

सामर्थ्यानुसारेण व्यवस्था ॥ अधि० १९ ॥

अर्थाद्वा कल्पनैकदेशत्वात् ॥ ३० ॥

हस्तेनावद्यति स्रुवेणावद्यति " स्वधितिनाऽवद्यति (तत्तद्यागे· पुसम्पादितेभ्यश्चरु पुरोडाश साम्नाय्येभ्यो हविर्भ्यः तत्तद्देवता- भ्यः प्रदानार्थं यत् पृथक् करणं तदवदानमित्युच्यते। तद- वदानं द्रव द्रव्येषुदध्याज्य पयः प्रभृतिषु स्रुवेण कुर्यात्, चरुपुरोडाशादिषु कठिन द्रव्येषु हस्तेन कुर्यात्, वपामांसा· दौतु स्वधितिना कुर्यादिति विषय वाक्यार्थः) इति विहित

है इस कारण विधेय अर्थ भी घृत ही है यह सिद्ध होता है इस लिये उक्त वाक्य में घृतसे अक्त शर्कराकाही ग्रहण है तेल आदिसे नहीं। अर्थवादसे विधेय अर्थकाही स्तुति होने से यह भाव है ॥ २९ ॥

पदार्थों के सामर्थ्य के अनुसार व्यवस्था होती है इसकी सिद्धि के लिये उन्नीसवें अधिकरण की रचना करते हैं। "हस्तेन०" इत्यादि वाक्यों से विहित अवदान के साधनत्रय हैं उनों का प्रत्येक यावत् अवदान के उद्देश से हैं किंवा द्रव्य विशेष में साधन विशेष हैं इस संशय के होने पर उसका निर्णायक कोई वाक्य है नहीं इसलिये प्रथम कल्पही ठीक है ऐसा बाहर से पूर्वपक्ष होनेपर सिद्धान्त को कहते हैं। अर्थात् द्रव्यादि के। (अर्थात्) वस्तु - पदार्थ की शक्ति की योग्य

मवदान साधन त्रयं प्रत्येकं यावदवदानोद्देशेन उतद्रव्य विशेषे साधन विशेष इति संशये नियामका भावात् प्रथम कल्प एवेति बहिः पूर्व पक्षे सिद्धान्त माह । अर्थादिति । अर्थात् वस्तु वृत्ति सामर्थ्याद् । विधेयार्थ सिद्धिरिति पूरणीयम् । ननु तर्कात्सिद्धस्याधर्मत्वमित्याशङ्कायामाह । कल्पनेति । कल्पनायाः हस्तेन चरुपुरोडाशादीनामेव स्व· धितिनामांसस्यैव स्रुवेणाज्यादेरेव ग्रहणमिति सामर्थ्यानुसारेण कल्पित पदेषु वेदैकदेशत्वात् । तथाच वेदप्रतिपाद्यत्वेन धर्मत्व मव्याहतमिति भावः ॥ ३० ॥

इति श्रीमज्जैमिनिसूत्रवृत्त्यां प्रथमाध्यायस्य चतुर्थपादः ॥ ४ ॥

ताके अनुसार विधेयार्थ अवदान की सिद्धि होती है इस पद का सूत्र में पूर्ण करना चाहिये ननु तर्क से सिद्ध पदार्थ को अधर्मत्व हो जायगा इस शंका के होने पर कहते हैं। कल्पना इत्यादि से। (कल्पनायाः) हस्त से चरु पुरोडाश ही के स्वधिति से मांसही के स्रुवासे आज्यही के अवदान का ग्रहण करना चाहिये इस प्रकार सामर्थ्य के अनुसार से कल्पित चरु पुरोडाशादि पदों में वेद का एक देशत्व होने से । तथाच वेद प्रतिपाद्य होने से धर्मत्व अव्याहत है अर्थात् धर्मत्वका बाध नहीं यह भाव है ॥ ३० ॥

रायरत्न श्रीविनायकराव शास्त्र्यन्तेवासी
ब्रह्मचारी श्री सर्वेश्वरानन्द कृत प्रथमाध्याय के चतुर्थपाद के
जैमिनिसूत्रवृत्ति का अनुवाद समाप्त ॥

ॐ

शुद्धि—पत्र.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	७	वृत्या	वृत्य
३	१४	अथं	अर्थं
,,	१९	वोदनेति	चोदनेति
७	१८	करके	लिङ्ग करके
८	२१	ओप्तत्ति	औत्पत्ति
१२	८	शम्ः	शम्
१७	१०	करना	करता
२२	१२	कालिङ्ग हैं	कोलिङ्ग कहते हैं
,,	९	धम	धर्म
२५	५	रुप	रूप
		रुप विरुप जहां जहां आवे तहां तहां सर्वत्र रूप विरूप ऐसा समझना चाहिये ॥	
२९	३	कोऽघं	कोऽर्घः
३३	७	स्ये	स्यै
३४	२	भ	भे
३५	४	पेक्षं	क्षेपः तमेवाक्षेपं
,,	१९	आवां	आकांक्षा
३८	१२	माम	नाम
,,	१७	लेवाक्यों	वाक्यों
,,	१८	हातत्य	हीतत्व
४१	३	स्तेनेमनसि	अस्तेनेमनसि
४३	२	त्येक्ष	त्यक्षे
,,	१६	मत्र	मन्त्र
४४	१५	निगाम	निर्गम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्ध
११०	८	म	स
,,	९	धा	या
१११	५	यो	या
,,	१६	उत	उक्त
,,	२२	नियत	निपतन
११२	२०	साहश्य	सादृश्य
११४	३	क्तो	त्को
११६	८	ज	थ
११८	२	श्रू	श्रू
११७	१२	स्य	स्म
११९	१०		स्त्री लिङ्ग बहुवचनाभ्याम्
१२१	१०	शेष	शेषः
१२८	१५	ल	ला
१२९	१४	श्रु	श्रू
१३०	९	पदं	परं
१३१	१२	क	कः
१३४	१६	मा	वाँ
१३७	८	भ्म	रुप
१४१	२	शृ	घृ

पुस्तक मिलनेका पता—
श्री बालाजी गणेश
दी बड़ा सराफा कॉटन एसोसिएशन
इन्दौर.



हरिलाल प्रिंटिंग प्रेस, इमली बाजार, इन्दौर.